मोहन राकेश
आषाढ़
का
एक
दिन

आषाढ़ का एक दिन

ललित कला अकादेमी द्वारा पुरस्कृत नाटक

मोहन राकेश

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे (२·५०)

मुद्रक : राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स, क्वींस रोड, दिल्ली

AASHADH KA EK DIN by Mohan Rakesh

DRAMA 2·50

दो शब्द

हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्यूत नहीं है। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियाँ ही हमारे सामने हैं। परन्तु न तो हमारा जीवन उन सब उपलब्धियों की माँग करता है, और न ही यह सम्भव प्रतीत होता है कि हम उस रंगशिल्प को व्यापक रूप से ज्यों का त्यों अपने यहाँ प्रतिष्ठित कर दें।

हिन्दी रंगमंच के विकास से निस्सन्देह यह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न रंगशालाएँ राजकीय या अर्धराजकीय संस्थाओं द्वारा जहाँ-तहाँ बनवा दी जाएँ जिससे वहाँ हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन किया जा सके। प्रश्न केवल आर्थिक सुविधा का ही नहीं, एक सांस्कृतिक दृष्टि का भी है। हिन्दी रंगमंच को हिन्दीभाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए, हमारे संवेदों और स्पन्दनों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूपविधान नाटकीय प्रयोगों के आभ्यन्तर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों उसका विकास होगा।

सम्भव है यह नाटक उन सम्भावनाओं की खोज में कुछ योग दे सके।

—**मोहन राकेश**

वसन्त, १९५८

पात्र

अम्बिका	:	ग्राम की एक वृद्धा
मल्लिका	:	उसकी पुत्री
कालिदास	:	कवि
दन्तुल	:	राजपुरुष
मातुल	:	कवि-मातुल
निक्षेप	:	ग्राम-पुरुष
विलोम	:	ग्राम-पुरुष
रंगिणी	:	नागरी
संगिनी	:	नागरी
अनुस्वार	:	अधिकारी
अनुनासिक	:	अधिकारी
प्रियंगुमंजरी	:	राजकन्या—कवि-पत्नी

अंक १

[पर्दा उठने से पूर्व हल्का-हल्का मेघ-गर्जन और वर्षा का शब्द सुनायी देने लगता है जो पर्दा उठने के अनन्तर भी कुछ क्षण चलता रहता है, फिर धीरे-धीरे मन्द पड़ कर विलीन हो जाता है।

पर्दा धीरे-धीरे उठता है।

एक साधारण प्रकोष्ठ। दीवारें लकड़ी की हैं, परन्तु निचले भाग में चिकनी मिट्टी से पोती गयी हैं। बीच-बीच में गेरू से स्वस्तिक के चिह्न बने हैं। सामने का द्वार अँधेरी-सी ड्योढ़ी में खुलता है। उसके दोनों ओर छोटे-छोटे ताक हैं, जिनमें मिट्टी के बुझे हुए दीपक रखे हैं। बाईं ओर का द्वार दूसरे प्रकोष्ठ में जाने के लिए है। द्वार खुला होने पर उस प्रकोष्ठ में बिछे हुए तल्प[1] का एक कोना भी दिखायी देता है।

द्वारों के किवाड़ भी मिट्टी से पोते गये हैं और उनपर गेरू एवं हल्दी से कमल तथा शंख बनाये गये हैं। दाईं ओर बड़ा-सा झरोखा है, जहाँ से बीच-बीच में बिजली कौंधती दिखायी देती है।

प्रकोष्ठ में एक ओर चूल्हा है, जिसके आसपास मिट्टी और काँसे के बरतन सहेजकर रखे हैं। दूसरी ओर, झरोखे से कुछ हटकर तीन-चार बड़े-बड़े कुम्भ रखे हैं जिनपर कालिख और काई जमी है। उन्हें कुशा से ढककर ऊपर पत्थर रख दिये गए हैं।

---

१. तल्प—शय्या

झरोखे से सटा हुआ एक लकड़ी का आसन है जिसपर बाघ-छाल बिछी है। चूल्हे के निकट दो-एक चौकियाँ पड़ी हैं। उन्हींमें से एक पर बैठी अम्बिका छाज में धान फटक रही है। एक बार झरोखे की ओर देखकर वह लम्बी साँस लेती है, फिर व्यस्त हो जाती है। सामने का द्वार खुलता है और मल्लिका गीले वस्त्रों में काँपती-सिमटती-सी अन्दर आती है। अम्बिका आँखें झुकाये व्यस्त रहती है। मल्लिका क्षण-भर ठिठकती है, फिर अम्बिका के निकट आ जाती है।]

मल्लिका : आषाढ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ! ···ऐसी धारासार वर्षा! दूर-दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयीं।··· और मैं भी तो! देखो न माँ, कैसी भीग गयी हूँ।

[अम्बिका उसपर सिर से पैर तक एक दृष्टि डालकर फिर व्यस्त हो जाती है। मल्लिका घुटनों के बल बैठकर उसके कंधे पर सिर रख देती है।]

गयी थी कि दक्षिण से उड़कर आती हुई बकुल-पंक्तियों को देखूँगी, और देखो सब वस्त्र भिगो आयी हूँ।

[उसके केशों को चूमकर खड़ी होती हुई शीत से सिहर जाती है।]

सूखे वस्त्र कहाँ हैं माँ! इस तरह खड़ी रही तो जुड़ा जाऊँगी।···तुम बोलती क्यों नहीं?

[अम्बिका आक्रोशपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।]

अम्बिका : सूखे वस्त्र अन्दर तल्प पर हैं।

मल्लिका : तुमने पहले से ही निकालकर रख दिये?

[अन्दर को चल देती है।]

तुम्हें पता था मैं भीग जाऊँगी। और मैं जानती थी तुम चिन्तित होगी परन्तु माँ···

[द्वार के पास से मुड़कर अम्बिका की ओर देखती है।]

मुझे भीगने का तनिक खेद नहीं। भीगती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती।

[द्वार से टेक लगा लेती है।]

चारों ओर धुआँरे मेघ घिर आये थे। मैं जानती थी वर्षा होगी। फिर भी मैं घाटी की पगडंडी पर नीचे-नीचे उतरती गयी। एक बार मेरा अंशुक भी हवा ने उड़ा दिया। फिर बूँदें पड़ने लगीं।

[सहसा अम्बिका से आँखें मिल जाती हैं।]

वस्त्र बदल लूँ, फिर आकर तुम्हें बताती हूँ। वह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्भुत।

[अन्दर चली जाती है। अम्बिका उठकर फटके हुए धान को एक कुम्भ में डाल देती है और दूसरे कुम्भ से नया धान निकाल लाती है। अन्दर के प्रकोष्ठ से मल्लिका के शब्द सुनाई देते रहते हैं। बीच-बीच में उसकी आकृति की झलक भी दिखाई दे जाती है।]

नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय!···मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूँ और आँखें मूँद लूँ।···मेरा तो शरीर भी निचुड़ रहा है माँ। कितना पानी इन वस्त्रों ने पिया है! ओह!

शीत की चुभन के बाद उष्णता का यह स्पर्श।

[गुनगुनाने लगती है।]

कुवलयदलनीलैरुन्नतैस्तोयनम्रैः... गीले वस्त्र कहाँ डाल दूँ माँ ? यहीं रहने दूँ ?

मृदुपवनविधूतैर्मन्दमन्दं चलद्भिः...अपहृतमिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः...पथिकजनवधूनां तद्वियोगाकुलानाम् ।

[बाहर आ जाती है ।]

माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती । सौंदर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया । जैसे वह सौंदर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो । मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी । तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है । मैं जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत-शिखरों को सहलाती हुई मेघ-मालाओं में खो जाता है, क्यों किसीको अपने तन-मन की अपेक्षा आकाश में बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है ।...क्या बात है माँ ! इस तरह चुप क्यों हो ?

अम्बिका : देख रही हो, मैं काम कर रही हूँ ।

मल्लिका : काम तो तुम हर समय करती हो माँ ! परन्तु हर समय इस तरह चुप नहीं रहतीं ।

[अम्बिका के निकट आ बैठती है । अम्बिका चुपचाप धान फटकती रहती है । मल्लिका उसके हाथ से छाज ले लेती है ।]

मैं तुम्हें काम नहीं करने दूँगी ।...मुझसे बात करो ।

अम्बिका : क्या बात करूँ ?

मल्लिका : कुछ भी कहो । मुझे डाँटो कि भीगकर क्यों

आयी हूँ। या कहो कि तुम थक गयी हो, इसलिए शेष धान मैं फटक दूँ। या कहो कि तुम घर में अकेली थीं, इसलिए तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा था।

अम्बिका : मुझे सब अच्छा लगता है।

[छाज उससे ले लेती है।]

और मैं घर में दुकेली कब होती हूँ? तुम्हारे यहाँ रहने पर मैं अकेली नहीं होती?

मल्लिका : मैं तुम्हें काम नहीं करने दूंगी।

[फिर छाज उसके हाथ से ले लेती है और कुम्भों के पास रख आती है।]

मेरे घर में रहने पर भी तुम अकेली होती हो?...कभी तो मेरी भर्त्सना करती हो कि मैं घर में रहकर तुम्हारे सब कामों में बाधा डालती हूँ और कभी कहती हो...

[पीठ के पीछे से उसके गले में बाँह डाल देती है।]

मुझे बताओ, तुम इतनी गम्भीर क्यों हो?

अम्बिका : दूध औटा दिया है। शर्करा मिला लो और पी लो...

मल्लिका : नहीं, तुम पहले बताओ।

अम्बिका : और जाकर थोड़ी देर तल्प पर विश्राम कर लो। मुझे अभी...

मल्लिका : नहीं माँ, मुझे विश्राम नहीं करना है। थकी कहाँ हूँ जो विश्राम करूँ? मुझे तो अब भी अपने में बरसती बूँदों के पुलक का अनुभव होता है। रोम अभी तक सीज रहे हैं।...तुम बताती क्यों नहीं हो? ऐसे करोगी तो मैं भी तुमसे बात नहीं करूँगी।

[अम्बिका कुछ न कहकर आँचल से आँखें पोंछती है

ग्रौर उसे पीछे से हटाकर पास की चौकी पर बैठा देती है। मल्लिका क्षण-भर चुपचाप उसकी ग्रोर देखती रहती है।]

क्या हुग्रा है माँ ? तुम रो क्यों रही हो ?

ग्रम्बिका : कुछ नहीं मल्लिका ! कभी बैठे-बैठे मन उदास हो जाता है।

मल्लिका : बैठे-बैठे मन उदास हो जाता है, परन्तु बैठे-बैठे रोया तो नहीं जाता।...तुम्हें मेरी सौगन्ध है माँ, जो मुझे नहीं बताग्रो।

[दूर कुछ कोलाहल ग्रौर घोड़े की टापों का शब्द सुनाई देता है। ग्रम्बिका उठकर झरोखे के पास चली जाती है। मल्लिका क्षण-भर बैठी रहती है, फिर वह भी जाकर झरोखे से देखने लगती है। टापों का शब्द निकट ग्राकर दूर चला जाता है।]

मल्लिका : ये कौन लोग हैं माँ ?

अम्बिका : सम्भवतः राज्य के कर्मचारी हैं।

मल्लिका : ये यहाँ क्या कर रहे हैं ?

अम्बिका : न जाने क्या कर रहे हैं।...कभी वर्षों में ये ग्राकृतियाँ यहाँ दिखाई देती हैं। ग्रौर जब भी दिखाई देती हैं, कोई ग्रनिष्ट होता है। कभी युद्ध की सूचना ग्राती है, कभी महामारी की।

[लम्बी साँस लेती है।]

पिछली महामारी में जब तुम्हारे पिता की मृत्यु हुई, तब मैंने ये ग्राकृतियाँ यहाँ देखी थीं।

[मल्लिका सिर से पैर तक सिहर जाती है।]

मल्लिका : परन्तु आज ये लोग यहाँ किसलिए आये हैं ?

अम्बिका : न जाने ।

[अम्बिका फिर छाज उठाने लगती है, परन्तु मल्लिका उसे बाँह से पकड़कर रोक लेती है ।]

मल्लिका : माँ, तुमने बात नहीं बताई ।

[अम्बिका पल-भर उसे स्थिर दृष्टि से देखती रहती है । उसकी आँखें झुक जाती हैं ।]

अम्बिका : अग्निमित्र आज लौट आया है ।

[छाज उठाकर अपने स्थान पर चली जाती है । मल्लिका वहीं खड़ी रहती है ।]

मल्लिका : लौट आया है ? कहाँ से ?

अम्बिका : जहाँ मैंने उसे भेजा था ।

मल्लिका : तुमने भेजा था ?

[ओठ फड़फड़ाने लगते हैं और वह बढ़कर अम्बिका के निकट आ जाती है ।]

किन्तु मैंने तुमसे कहा था, अग्निमित्र को कहीं भेजने की आवश्यकता नहीं है ।

[क्रमशः स्वर में और उत्तेजना आ जाती है ।]

तुम जानती हो मैं विवाह नहीं करना चाहती । फिर उसके लिए प्रयत्न क्यों करती हो ? तुम समझती हो मैं निरर्थक प्रलाप करती हूँ ?

[अम्बिका धान को मुट्ठी में ले-लेकर जैसे मसलती हुई छाज में गिराने लगती है ।]

अम्बिका : मैं देख रही हूँ कि तुम्हारी बात ही सार्थक होने जा रही है । अग्निमित्र यही सन्देश लाया है कि वे लोग

इस सम्बन्ध के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। वे कहते हैं...

मल्लिका : क्या कहते हैं वे ? क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का ? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसीको उसपर आलोचना करने का क्या अधिकार है ?

अम्बिका : मैं कब कहती हूँ कि मुझे अधिकार है ?

[मल्लिका सिर को झटककर अपनी उत्तेजना को दबाने का प्रयत्न करती है।]

मल्लिका : मैं तुम्हारे अधिकार की बात नहीं कह रही थी।

अम्बिका : तुम न कहो, मैं तो कह रही हूँ। आज तुम्हारा जीवन तुम्हारी सम्पत्ति है। मेरा तुमपर कोई अधिकार नहीं है।

[मल्लिका पास की चौकी पर बैठकर उसके कन्धे पर हाथ रख देती है।]

मल्लिका : ऐसा क्यों कहती हो ?...तुम मुझे समझने का प्रयत्न क्यों नहीं करतीं ?

[अम्बिका उसका हाथ कन्धे से हटा देती है।]

अम्बिका : मैं जानती हूँ कि तुमपर आज अपना अधिकार भी नहीं है। किन्तु...इतना बड़ा अपवाद मुझसे नहीं सहा जाता।

[मल्लिका बाँहें घुटनों पर रखकर उनपर सिर टिका लेती है।]

मल्लिका : मैं जानती हूँ माँ, कि अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण

किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है···

[अम्बिका के चेहरे पर रेखाएँ खिंच जाती हैं।]

अम्बिका : और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनश्वर ! हुँ !

मल्लिका : माँ, तुम मुझपर विश्वास नहीं करतीं ?

अम्बिका : तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है।···भावना में भावना का वरण किया है !···मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं ?···भावना से भावना का वरण ! हुँ !

[मल्लिका क्षण-भर गरदन उठाकर छत की ओर देखती रहती है।]

मल्लिका : जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही तो सब कुछ नहीं हैं माँ ? उनके अतिरिक्त भी तो बहुत कुछ है।

[अम्बिका फिर धान फटकने लगती है।]

अम्बिका : होगा। मैं नहीं जानती।

[मल्लिका कुछ क्षण अम्बिका की ओर देखती रहती है।]

मल्लिका : सच तो यह है माँ, कि ग्राम के अन्य व्यक्तियों की तरह तुम भी उसे सन्देह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती हो।

अम्बिका : ग्राम के अन्य लोग उसे इतना नहीं जानते जितना मैं जानती हूँ।

[क्षण-भर दोनों की आँखें मिली रहती हैं।]

मैं उससे घृणा करती हूँ।

[मल्लिका के चेहरे पर व्यथा, आवेश तथा विवशता की रेखाएँ एकसाथ प्रकट होती हैं।]

मल्लिका : माँ !

अम्बिका : अन्य लोगों को उससे क्या प्रयोजन है ? किन्तु मुझे है। उसके प्रभाव में मेरा घर नष्ट हो रहा है।

[ड्योढ़ी की ओर से कालिदास के शब्द सुनायी देने लगते हैं। अम्बिका के माथे की रेखाएँ गहरी हो जाती हैं। वह छाज लिए उठ खड़ी होती है, क्षण-भर ड्योढ़ी की ओर देखती रहती है, फिर झटके से अन्दर की ओर चल देती है।]

मल्लिका : ठहरो माँ, तुम चल क्यों दीं ?

अम्बिका : माँ का जीवन भावना नहीं, कर्म है। उसे घर में बहुत कुछ करना है।

[चली जाती है। कालिदास एक हरिणशावक को बाँहों में लिए पुचकारता हुआ आता है। हरिणशावक के शरीर से लहू टपक रहा है।]

कालिदास : हम जियेंगे हरिणशावक ! जियेंगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जायेंगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल फिर हम वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खायेंगे। खायेंगे न ?

[मल्लिका प्रयास से अपनी मुखमुद्रा बदलकर द्वार की ओर जाती है।]

मल्लिका : यह आहत हरिणशावक ?...ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इसे आहत किया ? क्या दक्षिण की तरह यहाँ भी...?

कालिदास : आज ग्राम-प्रदेश में कई नई आकृतियाँ देख रहा हूँ।

[झरोखे के पास जाकर आसन पर बैठ जाता है।]

सम्भवतः राज्य के कुछ कर्मचारी आये हैं।

[हरिणशावक को वक्ष के साथ सटाकर थपथपाने लगता है।]

हम सोयेंगे ? हां, हम थोड़ी देर सो लेंगे तो हमारी पीड़ा दूर हो जायेगी। परन्तु उससे पूर्व हमें थोड़ा दूध पी लेना है।...मल्लिका, थोड़ा दूध हो तो किसी भाजन में ले आओ।

मल्लिका : माँ ने दूध औटाकर रखा है। देखती हूँ।

[चूल्हे के निकट रखे बरतनों के पास जाकर देखने लगती है।]

अभी-अभी दो-तीन राजकर्मचारियों को हमने घोड़ों पर जाते देखा था। माँ कहती थी कि जब भी ये लोग आते हैं कोई न कोई अनिष्ट होता है। वर्षागम के रोमांच के बाद मुझे यह सब बहुत विचित्र लगा।

[दूध का बरतन मिल जाने पर उससे दूध खुले बरतन में उँडेलने लगती है।]

माँ आज मुझसे बहुत रुष्ट है।

[कालिदास हरिणशावक को बाँहों में झुलाने लगता है।]

कालिदास : अब हम पहले से सुखी हैं । हमारी पीड़ा धीरे-धीरे दूर हो रही है । हम स्वस्थ हो रहे हैं ।…न जाने इसके रूई जैसे कोमल शरीर पर उससे बाण छोड़ते बना कैसे ? यह कुलांच भरता हुआ मेरी गोद में आ गया । मैंने कहा, तुम्हें वहाँ ले चलता हूँ जहाँ तुम्हें अपनी माँ की-सी आँखें और उसका-सा ही स्नेह मिलेगा ।

[स्निग्ध दृष्टि से मल्लिका की ओर देखता है । मल्लिका दूध लिए हुए पास आती है ।]

मल्लिका : सच, माँ आज बहुत रुष्ट है । माँ को अनुमान हो गया होगा कि वर्षागम के समय मैं तुम्हारे साथ थी, अन्यथा इस तरह भीगकर न आती । माँ को अपवाद की बहुत चिन्ता रहती है…

कालिदास : दूध मुझे दे दो और इसे बाँहों में ले लो ।

[दूध का भाजन उसके हाथ से ले लेता है । मल्लिका हरिणशावक को बाँहों में लेकर उसका मुँह दूध के निकट ले जाती है । हरिणशावक दो-एक बार दूध को जिह्वा से छूकर मुँह हटाने लगता है । कालिदास भाजन को उसके निकट कर देता है ।]

हम दूध नहीं पियेंगे ? नहीं, हम ऐसा हठ नहीं करेंगे । हम दूध अवश्य पियेंगे ।

[राजपुरुष दन्तुल डयोढ़ी से आकर द्वार के पास रुक जाता है । क्षण-भर वह उन्हें देखता रहता है । कालिदास हरिण को सिर से पकड़कर उसका मुँह दूध से मिला देता है ।]

ऐसे…ऐसे ।

[दन्तुल बढ़कर उनके निकट आता है।]

दन्तुल : दूध पिलाकर इसके कोमल मांस को और कोमल कर लेना चाहते हो ?

[कालिदास और मल्लिका चौंककर उसे देखते हैं। मल्लिका कुछ डरी-सी हरिणशावक को लिए थोड़ी दूर हट जाती है। कालिदास दूध के भाजन को आसन पर रख देता है।]

कालिदास : जहाँ तक मैं जानता हूँ, हम लोग परिचित नहीं हैं। तुम्हारा एक अपरिचित घर में आने का साहस कैसे हुआ ?

[दन्तुल एक बार मल्लिका की ओर देखता है, फिर कालिदास की ओर।]

दन्तुल : कैसी आकस्मिक बात है कि ऐसा ही प्रश्न मैं तुमसे पूछना चाहता था। हमारा कभी का परिचय नहीं, फिर भी मेरे बाण से आहत हरिण को उठा ले आने में तुम्हें संकोच नहीं हुआ ? यह तो कहो कि द्वार तक रक्त-बिन्दुओं के चिह्न बने हैं, अन्यथा इन बादलों से घिरे दिन में मैं तुम्हारा अनुसरण कर पाता ?

कालिदास : देख रहा हूँ कि तुम इस प्रदेश के निवासी नहीं हो।

[दन्तुल व्यंग्यात्मक हँसी हँसता है।]

दन्तुल : मैं तुम्हारी दृष्टि की प्रशंसा करता हूँ। मेरी वेश-भूषा ही इस बात का परिचय देती है कि मैं यहाँ का निवासी नहीं हूँ।

कालिदास : मैं तुम्हारी वेश-भूषा को देखकर नहीं कह रहा।

दन्तुल : तो क्या मेरे ललाट की रेखाओं को देखकर ? जान

पड़ता है कि चौरकर्म के अतिरिक्त सामुद्रिक का भी अभ्यास करते हो।

[मल्लिका चोट खाई-सी कुछ आगे आती है।]

मल्लिका : तुम्हें ऐसा लांछन लगाते लज्जा नहीं आती?

दन्तुल : क्षमा चाहता हूँ देवि! परन्तु यह हरिणशावक, जिसे आप बाँहों में लिये हैं, मेरे बाण से आहत हुआ है। इसलिए इस समय यह मेरी सम्पत्ति है। मेरी सम्पत्ति मुझे लौटा तो देंगी?

कालिदास : इस प्रदेश में हरिणों का आखेट नहीं होता राज-पुरुष! तुम बाहर से आये हो, इसलिए इतना ही पर्याप्त है कि हम इसके लिए तुम्हें अपराधी न मानें।

[दन्तुल फिर व्यंग्यात्मक हँसी हँसता है।]

दन्तुल : तो राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे! ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो?

कालिदास : शब्द और अर्थ राजपुरुषों की सम्पत्ति हैं, यह जान-कर आश्चर्य हुआ।

[दूध उठाकर हरिणशावक के निकट ले जाता है।]

दन्तुल : समझदार व्यक्ति जान पड़ते हो। फिर भी यह नहीं जानते कि राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं। मुझे देर हो रही है। यह हरिणशावक मुझे दे दो।

कालिदास : यह हरिणशावक इस पार्वत्य भूमि की सम्पत्ति है राजपुरुष! और इसी पार्वत्य भूमि के निवासी हम इसके सजातीय हैं। तुम यह सोचकर भूल कर रहे हो कि हम

इसे तुम्हारे हाथ में सौंप देंगे।...मल्लिका, इसे अन्दर ले जाकर तल्प पर या किसी आस्तरण[1] पर...

[अम्बिका सहसा अन्दर से आती है।]

अम्बिका : इस घर के तल्प और आस्तरण हरिणशावकों के लिए नहीं हैं।

मल्लिका : तुम देख रही हो माँ...

अम्बिका : हाँ, देख रही हूं। इसीलिए तो कह रही हूँ। तल्प और आस्तरण मनुष्यों के सोने के लिए हैं, पशुओं के लिए नहीं।

कालिदास : इसे मुझे दे दो मल्लिका!

[दूध का भाजन नीचे रख देता है और बढ़कर हरिण-शावक को अपनी बांहों में ले लेता है।]

इसके लिए मेरी बाँहों का आस्तरण ही पर्याप्त होगा। मैं इसे घर ले जाऊँगा।

[द्वार की ओर चल देता है। दन्तुल तीक्ष्ण दृष्टि से उसे देखता रहता है।]

दन्तुल : और राजपुरुष दन्तुल तुम्हें ले जाते देखता रहेगा!

कालिदास : यह राजपुरुष की रुचि पर निर्भर करता है।

[बिना रुके या उसकी ओर देखे ड्योढ़ी में चला जाता है।]

दन्तुल : राजपुरुष की रुचि-अरुचि क्या होती है, सम्भवतः इसका परिचय तुम्हें देना आवश्यक होगा।

[कालिदास बाहर चला जाता है। केवल उसका शब्द ही सुनाई देता है।]

---

१. आस्तरण—बिछावन

कालिदास : सम्भवत:।

दन्तुल : सम्भवत: ?

[तलवार की मूठ पर हाथ रखे उसके पीछे जाना चाहता है। मल्लिका शीघ्रता से जाकर द्वार के सामने खड़ी हो जाती है।]

मल्लिका : ठहरो राजपुरुष ! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनके लिए संवेदना का। कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।

दन्तुल : कालिदास ?...तुम्हारा अभिप्राय यह है कि मैं जिनसे हरिणशावक के लिए तर्क कर रहा था, वे कवि कालिदास हैं ?

मल्लिका : हाँ, हाँ। किन्तु तुम कैसे जानते हो कि कालिदास कवि हैं ?

दन्तुल : कैसे जानता हूँ ? उज्जयिनी राज्यसभा से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति 'ऋतुसंहार' के लेखक कवि कालिदास को जानता है।

मल्लिका : उज्जयिनी की राज्यसभा से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति उन्हें जानता है ?

दन्तुल : सम्राट् ने स्वयं ऋतुसंहार पढ़ा और उसकी प्रशंसा की है। इसलिए आज उज्जयिनी का राज्य ऋतुसंहार के लेखक का सम्मान करना और उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है। आचार्य वररुचि आज इसी उद्देश्य से उज्जयिनी से यहाँ आये हैं।

[मल्लिका जैसे अविश्वास से स्तम्भित हो जाती है।]

मल्लिका : उज्जयिनी का राज्य उन्हें सम्मान देना चाहता है ? राजकवि का आसन···?

दन्तुल : मुझे खेद है कि मैंने उनके साथ अभद्रता का व्यवहार किया। मुझे जाकर उनसे क्षमा माँगनी चाहिए।

[दन्तुल चला जाता है। मल्लिका कुछ क्षण उसी तरह खड़ी रहती है। फिर सहसा जैसे उसकी चेतना लौट आती है। अम्बिका इस बीच दूध का भाजन उठाकर कोने में रख देती है। जिस पात्र में पहले दूध रखा था, उसे देखती है। उसमें जो दूध शेष है, उसे एक छोटे पात्र में डालकर शर्करा मिलाने लगती है। उसके हाथ ऐसे अस्थिर हैं जैसे वह अन्दर ही अन्दर बहुत उत्तेजित हो। मल्लिका निचला ओठ दाँतों में दबाये हुए भागकर उसके निकट आती है।]

मल्लिका : तुमने सुना माँ···राज्य उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है !

[अम्बिका हाथ से गिरते हुए दूध के पात्र को किसी तरह सँभाल लेती है।]

अम्बिका : तुम्हारे गीले वस्त्र मैंने सूखने के लिए फैला दिये हैं। यह थोड़ा-सा दूध शेष है, इसमें शर्करा मिला दी है।

मल्लिका : तुमने सुना नहीं माँ! राजपुरुष क्या कह रहा था ?

अम्बिका : दूध पी लो। आशा करती हूँ कि अब यहाँ किसी और का आतिथ्य नहीं होना है।

मल्लिका : आतिथ्य ?···मैं चाहती हूँ कि आज इस घर में मैं सारे संसार का आतिथ्य कर सकूँ।

[दूध का पात्र अम्बिका के हाथ से ले लेती है।]

तुम्हें इस दूध से नहला दूँ माँ ?

[पात्र ऊँचा उठा देती है। अम्बिका पात्र उसके हाथ से ले लेती है।]

अम्बिका : मैं दूध से बहुत नहा चुकी हूँ।

मल्लिका : तुम कितनी निष्ठुर हो माँ। तुमने सुना नहीं, राज्य उन्हें सम्मान दे रहा है ? फिर भी तुम···

अम्बिका : दूध पी लो। और फिर वर्षा में भीगने का मोह न हो तो मैं तुम्हारे लिए आस्तरण बिछा दूँ।···मैं जैसी निष्ठुर हूँ, रहने दो।

[मल्लिका उसके गले में बाँहें डाल देती है।]

मल्लिका : नहीं, तुम निष्ठुर नहीं हो। मैंने कब कहा है कि तुम निष्ठुर हो ?

अम्बिका : नहीं, तुमने नहीं कहा। दूध पी लो।

[मल्लिका दूध का पात्र उसके हाथ से लेकर एक घूंट में दूध पी जाती है और पात्र कोने में रख देती है। फिर अम्बिका का हाथ खींचकर उसे बिठा लेती है और स्वयं उसकी गोद में लेटकर उसके गले में बाँह डाल देती है।]

मल्लिका : माँ, तुम सोच सकती हो, मैं आज कितनी प्रसन्न हूँ ?

अम्बिका : मेरे पास कुछ भी सोचने की शक्ति नहीं है। अब उठ जाने दो, मुझे बहुत काम करना है।

[उठने का प्रयत्न करती है। मल्लिका उसे रोके रहती है।]

मल्लिका : नहीं, उठो नहीं। इसी तरह बैठी रहो।···राज्य

उन्हें सम्मान दे रहा है माँ! उन्हें राजकवि का आसन प्राप्त होगा।

[सहसा अम्बिका की गोदी से हटकर बैठ जाती है।]

उस व्यक्ति को, जिसे उसके निकट के लोगों ने आज तक समझने का प्रयत्न नहीं किया, जिसे घर में और घर से बाहर केवल लांछना और प्रताड़ना ही मिली है।...अब तो तुम विश्वास करती हो माँ, कि मेरी भावना निराधार नहीं है।

[अम्बिका उठ खड़ी होती है।]

अम्बिका : मैं कह चुकी हूँ कि मेरी सोचने-समझने की शक्ति जड़ हो चुकी है।

मल्लिका : क्यों माँ? क्यों तुम्हें इतना पूर्वग्रह है? क्यों तुम उनके सम्बन्ध में उदारतापूर्वक नहीं सोच पातीं?

अम्बिका : मेरी वह अवस्था बीत चुकी है, जब यथार्थ से आँखें मूँदकर जिया जाता है।

[अन्दर की ओर जाने लगती है। मल्लिका सहसा उठकर खड़ी हो जाती है।]

मल्लिका : और तुम्हारी यथार्थ दृष्टि केवल दोष ही दोष देखती है?

[अम्बिका मुड़कर पल-भर उसे देखती रहती है।]

अम्बिका : जहाँ दोष है, वहाँ अवश्य वह दोष देखती है।

मल्लिका : उनमें तुम्हें क्या दोष दिखाई देता है?

अम्बिका : वह व्यक्ति आत्मसीमित है: संसार में अपने अतिरिक्त उसे और किसीसे मोह नहीं है।

मल्लिका : इसलिए कि वे मातुल की गौएँ न हाँककर बादलों

में खो रहते हैं ?

अम्बिका : मेरा मातुल से और उसकी गौओं से कोई प्रयोजन नहीं है। मैं केवल अपने घर को देखकर कहती हूँ।

मल्लिका : बैठ जाओ मां !

[अम्बिका को हाथ से पकड़कर झरोखे के निकट आसन पर ले जाती है।]

...मैं तुम्हारी बात समझना चाहती हूँ।

अम्बिका : मैं भी चाहती हूँ कि तुम आज समझ लो।...तुम कहती हो कि तुम्हारा उससे भावना का सम्बन्ध है। वह भावना क्या है ?

मल्लिका : मैं उसे कोई नाम नहीं देती।

[अम्बिका के पैरों के पास नीचे बैठ जाती है।]

अम्बिका : परन्तु लोग उसे नाम देते हैं।...यदि वास्तव में उसका तुमसे भावना का सम्बन्ध है तो वह क्यों तुमसे विवाह नहीं करना चाहता ?

मल्लिका : तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो माँ। तुम जानती हो कि उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है ! मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही है ? उस साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्योंकर की जा सकती थी ?

अम्बिका : और अब जबकि उसका जीवन साधनहीन और अभावग्रस्त नहीं रहेगा ?

[मल्लिका कुछ क्षण मौन रहकर धरती को नखों से खोदती रहती है।]

किसी सम्बन्ध से बचने के लिए अभाव जितना बड़ा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण बन जाती है।

मल्लिका : यह तुम्हारी नहीं, विलोम की भाषा है।

अम्बिका : मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो ? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है ? कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी न होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी ? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी ? फिर कह दो कि यह मेरी नहीं विलोम की भाषा है।

[मल्लिका पुनः सिर झुकाये कुछ क्षण धरती को नखों से खोदती रहती है। फिर अम्बिका की ओर देखती है।]

मल्लिका : माँ, आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है; आगे भी बीत जायेगा। आज जब उनका जीवन एक नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्‌घोष नहीं करना चाहती।

[ड्योढ़ी के बाहर से मातुल के शब्द सुनाई देने लगते हैं।]

मातुल : अम्बिका !...अम्बिका !...घर में हो कि नहीं ?

[अम्बिका और मल्लिका ड्योढ़ी की ओर देखने लगती हैं। मातुल अस्तव्यस्त-सा आता है।]

मातुल : हो, हो, हो, घर में ही हो ? मैं आज सारे ग्राम में घोषणा करने जा रहा हूँ कि मेरा इस कालिदास नामधारी जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मल्लिका : क्या हुआ है आर्य मातुल ?

मातुल : मैंने इसे पाला-पोसा, बड़ा किया। क्या इस दिन के लिए ? कि यह इस तरह कुलद्रोही बने ?

[मल्लिका सिमटकर बैठ जाती है और आश्चर्य के साथ मातुल को देखती है।]

मल्लिका : परन्तु उन्हें तो सुना है, राज्य की ओर से सम्मानित किया जा रहा है। उज्जयिनी से कोई आचार्य आये हैं।

मातुल : यही तो कह रहा हूँ। उज्जयिनी से बहुत बड़े आचार्य आये हैं।

मल्लिका : परन्तु आप तो कह रहे हैं···

मातुल : मैं ठीक कह रहा हूँ। आचार्य कल ही इसे अपने साथ उज्जयिनी ले जाना चाहते हैं।

मल्लिका : किन्तु···

मातुल : दो रथ, दो रथवाह और चार अश्वारोही उनके साथ हैं। मैं तुमसे नहीं कहता था अम्बिका, कि हमारे प्रपितामह के एक दौहित्र का पुत्र गुप्त राज्य की ओर से शकों से युद्ध कर चुका है ?

अम्बिका : तुम अपने भागिनेय की बात कर रहे थे।

मातुल : उसीकी बात कर रहा हूँ अम्बिका ! तुम समझो कि एक तरह से यह राज्य की ओर से हमारे वंश का सम्मान किया जा रहा है और ये वंशावतंस कहते हैं कि मुझे

यह सम्मान नहीं चाहिए···

[मल्लिका सहसा उठकर खड़ी हो जाती है।]

मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।

[उत्तेजना में एक कोने से दूसरे कोने तक टहलने लगता है। मल्लिका कुछ क्षण आत्मविस्मृत-सी खड़ी रहती है।]

मल्लिका : वे राजकीय सम्मान को स्वीकार नहीं करना चाहते ?

मातुल : मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है ? सम्मान मिलता है ग्रहण करो। नहीं तो कविता का मूल्य ही क्या है।

मल्लिका : कविता का कुछ मूल्य है आर्य मातुल, तभी तो सम्मान का भी मूल्य है।···मैं समझ सकती हूँ कि उनके हृदय में यह सम्मान कहाँ चुभता है।

[अम्बिका कुछ सोचती-सी अपने अंशुक को उँगलियों में मसलने लगती है।]

अम्बिका : मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ मातुल, कि वह उज्जयिनी अवश्य जायगा।

[मातुल उसी तरह टहलता रहता है।]

मातुल : अवश्य जायगा ! वे लोग इसके अनुचर हैं जो अभि-स्तुति करके इसे ले जायेंगे !

अम्बिका : सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गयी उदासीनता व्यक्ति के महत्त्व को बढ़ा देती है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये कि तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में भी निष्णात है।

[मातुल सहसा रुक जाता है।]

मातुल : यह लोकनीति है, तो मैं कहूँगा कि लोकनीति और मूर्खनीति दोनों का एक ही अर्थ है। (फिर टहलने लगता है।) जो व्यक्ति कुछ देता है, धन हो या सम्मान हो, वह अपना मन बदल भी सकता है। और मन बदल गया तो बदल गया। (फिर रुक जाता है।)

तुम सोचो कि सम्राट् रुष्ट भी तो हो सकते हैं कि एक साधारण कवि ने उनका सम्मान स्वीकार नहीं किया।

[निक्षेप बाहर से आता है।]

निक्षेप : मातुल, आप अभी तक यहाँ हैं, और आचार्य आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मातुल : और तुम यहाँ क्या कर रहे हो? मैंने तुमसे नहीं कहा था कि जब तक मैं लौटकर न आऊँ, तुम आचार्य के पास रहना?

निक्षेप : परन्तु यह भी तो कहा था कि आचार्य विश्राम कर चुकें तो तुरन्त आपको सूचना दूँ।

मातुल : यह भी कहा था। किन्तु वह भी तो कहा था। यह कहा तुम्हारी समझ में आ गया, वह नहीं आया?

निक्षेप : किन्तु मातुल···

मातुल : किन्तु मातुल क्या? मातुल मूर्ख है? बताओ तुम मुझे मूर्ख समझते हो?

निक्षेप : नहीं मातुल···

मातुल : मैं मूर्ख नहीं तो निश्चित रूप से तुम मूर्ख हो।···आचार्य ने क्या कहा है?

निक्षेप : उन्होंने कहा है कि वे आपके साथ इस सारे ग्राम-

प्रदेश में घूमना चाहते हैं…

[मातुल के मुख पर गर्व की रेखाएँ व्यक्त होती हैं।]

जिस प्रदेश ने कालिदास की कविता को जन्म दिया है।

[मातुल के मुख की रेखाएँ वितृष्णा की रेखाओं में बदल जाती हैं।]

मातुल : कलिदास की कविता !

[फिर टहलने लगता है।]

न जाने इतने बड़े आचार्य को इसकी कविता में क्या विशेषता दिखाई देती है ?

[रुककर अम्बिका की ओर देखता है।]

इस व्यक्ति को सामान्य लोकव्यवहार तक का तो ज्ञान नहीं और तुम लोकनीति की बात कहती हो।…आप एक हरिणशावक को गोदी में लिये घर की ओर आ रहे थे। सौभाग्यवश मैंने बाहर ही देख लिया। मैंने प्रार्थना की कि कविकुलगुरु, यह समय इस रूप में घर जाने का नहीं है। उज्जयिनी से एक बहुत बड़े आचार्य आये हैं। आप यह सुनते ही लौट पड़े, जैसे रास्ते में साँप देख लिया हो।

[मल्लिका अम्बिका के पास आसन पर बैठ जाती है। निक्षेप कन्धे हिलाता है। मातुल टहलने लगता है।]

अम्बिका : मल्लिका, मातुल के लिए अन्दर से आसन ला दो।

[मल्लिका उठने का उपक्रम करती है, किन्तु मातुल उसे रोक देता है।]

मातुल : नहीं, मुझे आसन नहीं चाहिए। आचार्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

[निक्षेप अम्बिका की ओर देखकर मुस्कराता है। मातुल कोने तक जाकर लौटता है।]

मैंने कहा, कविवर्य, आचार्य आपको साथ उज्जयिनी ले जाने के लिए आये हैं। राज्य की ओर से आपका सम्मान होगा। (रुक जाता है।)

सुनकर रुके। रुककर जलते अंगारे की-सी दृष्टि से मुझे देखा।—'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।'—ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके विरह में घुली जाती हों, और चल दिये।...मेरे लिए धर्म-संकट खड़ा हो गया कि अनुनय करता हुआ आपके पीछे-पीछे जाऊँ या अभ्यागतों को देखूँ। अब इस निक्षेप से आचार्य के पास बैठने को कहकर आया था और यह धुरीहीन चक्र की तरह मेरे पीछे-पीछे चला आया है।

निक्षेप : किन्तु मातुल, मैं तो समाचार देने आया था कि...

मातुल : और मैं समाचार देने के लिए तुमसे साधुवाद कहता हूँ। बहुत अच्छा किया! अभ्यागत वहाँ बैठे हैं और आप समाचार देने यहाँ चले आये हैं!...अब इतना कीजिए कि ये कविकुल-शिरोमणि जहाँ भी हों, उन्हें ढूँढ़कर लाइये।

[बाहर की ओर चल देता है।]

मेरा कर्तव्य कहता है, जैसे भी हो, उसे आचार्य के सामने प्रस्तुत करूँ।...और मेरा मन कहता है कि उसे जहाँ देखूँ वहीं से शिखान्यस्तहस्त[1]...

[चला जाता है।]

---

१. शिखान्यस्तहस्त—चोटी हाथ में पकड़कर

निक्षेप : मातुल का तीसरा नेत्र हर समय खुला रहता है।

मल्लिका : परन्तु कालिदास इस समय हैं कहाँ ?

निक्षेप : कालिदास इस समय जगदम्बा के मन्दिर में हैं।

मल्लिका : आपने उन्हें देखा है ?

[निक्षेप सिर हिलाता है।]

निक्षेप : देखा है।

मल्लिका : परन्तु आपने मातुल से नहीं कहा ?

निक्षेप : मैं नहीं चाहता था कि मातुल इस समय वहाँ जायें।

मल्लिका : क्यों ? आप भी नहीं चाहते कि कालिदास…?

निक्षेप : मैं चाहता हूँ कि कालिदास उज्जयिनी अवश्य जायें। इसीलिए मैंने मातुल का इस समय उनके पास जाना उचित नहीं समझा।…मातुल को अपने मुख से उच्चरित शब्दों को सुनने में ऐसा रस प्राप्त होता है कि वे बोलते ही जाते हैं, परिस्थिति को समझना नहीं चाहते।… कालिदास हठ कर रहे हैं कि जब तक उज्जयिनी से आये हुए अतिथि लौट नहीं जाते, वे जगदम्बा के मन्दिर में ही रहेंगे, घर नहीं जायेंगे।

अम्बिका : कैसी विचक्षणता है!

निक्षेप : विचक्षणता ?

अम्बिका : विचक्षणता ही तो है।

निक्षेप : इसमें विचक्षणता क्या है अम्बिका ?

[अम्बिका तीखी दृष्टि से निक्षेप को देखती है।]

अम्बिका : राज्य कवि का सम्मान करना चाहता है। कवि सम्मान के प्रति उदासीन जगदम्बा के मन्दिर में साधना-

निरत है। राज्य के प्रतिनिधि मन्दिर में जाकर कवि की अभ्यर्थना करते हैं। कवि धीरे-धीरे आँखें खोलता है।... इतना बड़ा नाटक खेलना विचक्षणता नहीं है ?

निक्षेप : कालिदास नाटक नहीं खेल रहे अम्बिका ! मुझे विश्वास है कि उन्हें राजकीय सम्मान का मोह नहीं है। वे सचमुच इस पर्वत भूमि को छोड़कर नहीं जाना चाहते।

[अम्बिका अपने स्थान से उठकर उस ओर जाती है जिधर बरतन इत्यादि पड़े हैं।]

अम्बिका : नहीं चाहता ! हूँ...!

[एक थाली लाकर उसमें कुम्भ के चावल निकालने लगती है।]

निक्षेप : मातुल का या किसीका भी आग्रह उनका हठ नहीं छुड़ा सकता।

[मल्लिका को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखता है। मल्लिका की आँखें झुक जाती हैं।]

केवल एक व्यक्ति है, जिसके अनुरोध से सम्भव है कि वे यह हठ छोड़ दें।

[अम्बिका निक्षेप की अर्थपूर्ण दृष्टि को और फिर मल्लिका को देखती है।]

अम्बिका : हमारे घर में किसीको उसके हठ छोड़ने या न छोड़ने से कोई प्रयोजन नहीं है।

[थाली लिये हुए चूल्हे के निकट चली जाती है और उन दोनों की ओर पीठ किये हुए अपने को व्यस्त रखने का प्रयत्न करती है।]

निक्षेप : कालिदास अपनी भावुकता में यह भूल रहे हैं कि इस

अवसर का तिरस्कार करके वे बहुत कुछ खो बैठेंगे। योग्यता एक-चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेषपूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है। कालिदास को राजधानी अवश्य जाना चाहिये।

[अम्बिका व्यस्त रहने का प्रयत्न करती हुई भी व्यस्त नहीं हो पाती।]

अम्बिका : तो उसमें बाधा क्या है ?

निक्षेप : मैंने अनुभव किया है कि उनके हठ के मूल में कहीं बहुत गहरी कटुता की रेखा है।

मल्लिका : मैं जानती हूँ, वह कटुता की रेखा कहाँ है।...कुछ समय पहले एक राजपुरुष से उनका साक्षात्कार हो चुका है।

निक्षेप : उस कटुता को केवल तुम्हीं दूर कर सकती हो मल्लिका ! अवसर किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं तो राज्य की कोई हानि न होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज हैं, जीवन-भर वही रहेंगे—केवल एक स्थानीय कवि। जो लोग आज 'ऋतुसंहार' की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जायेंगे।

[मल्लिका अपने में खोई-सी उठ खड़ी होती है।]

मल्लिका : नहीं, उन्हें इस सम्मान का तिरस्कार नहीं करना चाहिये। यह सम्मान उनके व्यक्तित्व का है। उन्हें अपने व्यक्तित्व को उसके अधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये। चलिये, मैं आपके साथ जगदम्बा के मंदिर में चलती हूँ।

[अम्बिका सहसा आवेश में खड़ी हो जाती है।]

अम्बिका : मल्लिका!

[मल्लिका स्थिर किन्तु व्यथित दृष्टि से अम्बिका को देखती है।]

मल्लिका : माँ!

अम्बिका : मुझे एक बाहर के व्यक्ति के सामने कहना होगा कि मैं इस समय तुम्हारे वहाँ जाने के पक्ष में नहीं हूँ?

निक्षेप : निक्षेप बाहर का व्यक्ति नहीं है अम्बिका!

मल्लिका : यह एक महत्त्वपूर्ण क्षण है माँ! मुझे इस समय अवश्य जाना चाहिए। आर्य निक्षेप, आप आइये।

[अम्बिका की ओर देखे बिना चल देती है। अम्बिका की आँखों में आहत क्रोध का भाव जागरित होता है, जो पराजय के भाव में बदल जाता है। निक्षेप अम्बिका के इस बदलते हुए भाव को लक्षित करता क्षण-भर खड़ा रहता है।]

निक्षेप : क्षमा चाहता हूँ अम्बिका!

[मल्लिका के पीछे-पीछे चला जाता है। अम्बिका कुछ क्षण आँखें मूँदे खड़ी रहती है। फिर आँखें खोलकर अपने घर की वस्तुओं को एक-एक करके देखती है और जैसे टूटी-सी, चौकी पर बैठकर थाली के चावलों को मसलने लगती है। आँखों में आँसू उमड़ आते हैं, जिन्हें वह आंचल से पोंछ लेती है। प्रकाश अपेक्षया कम हो जाता है। अम्बिका के कण्ठ से रुँधा-सा स्वर निकलता है।]

अम्बिका : भावना!...ओह!

[आंचल में मुंह छिपा लेती है। प्रकाश कुछ और क्षीण हो जाता है। सहसा ड्योढ़ी के अंधेरे में उल्मुक[1] की ज्योति चमक उठती है। विलोम उल्मुक हाथ में लिये आता है। अम्बिका को इस रूप में बैठे देखकर क्षण-भर के लिये ठिठकता है। फिर उसके निकट चला आता है।]

विलोम : घिरे हुए मेघों ने आज असमय अंधकार कर दिया है अम्बिका, या तुम्हें समय का परिज्ञान नहीं रहा ?

[अम्बिका आँचल से मुँह उठाती है। उल्मुक के प्रकाश में उसके मुख-मण्डल की रेखाएँ बहुत गहरी और आँखें धँसी-सी दिखाई देती हैं।]

आश्चर्य है, तुमने दीपक नहीं जलाया !

अम्बिका : विलोम ! ···तुम यहाँ क्यों आये हो ?

[विलोम बाईं ओर दीपकों के निकट चला जाता है।]

विलोम : दीपक जला दूँ ?

[उल्मुक से छूकर दोनों दीपक जला देता है।]

विलोम का आना ऐसे आश्चर्य का विषय नहीं है।

[सामने के दीपकों के पास जाकर उन्हें जलाने लगता है। अम्बिका उठ खड़ी होती है।]

अम्बिका : तुम चले जाओ विलोम ! तुम जानते हो कि तुम्हारा यहाँ आना···

विलोम : मल्लिका को सह्य नहीं है।

[दीपक जलाकर अम्बिका की ओर घूमता है।]

मैं जानता हूँ अम्बिका ! मल्लिका बहुत भोली है। वह

---

१. उल्मुक—अग्निकाष्ठ, मशाल

लोक और जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती।

[दीवार में बने हुए आधार में उल्मुक को तिरछा करके लगा देता है।]

वह नहीं चाहती कि मैं इस घर में आऊँ, क्योंकि कालिदास नहीं चाहता।

[घूमकर अम्बिका के निकट आता है।]

और कालिदास क्यों नहीं चाहता ? क्योंकि मेरी आँखों में उसे अपने हृदय का सत्य झाँकता दिखाई देता है। उसे उलझन होती है।...किन्तु तुम तो जानती हो अम्बिका ! मेरा एकमात्र दोष यह है कि मैं जो अनुभव करता हूँ, स्पष्ट कह देता हूँ।

अम्बिका : मैं इस समय तुम्हारे दोष-अदोष का विवेचन नहीं करना चाहती।

विलोम : देख रहा हूँ कि इस समय तुम बहुत आर्त हो।... और तुम कब आर्त नहीं रहीं अम्बिका ? तुम्हारा तो जीवन ही पीड़ा का इतिहास है। पहले से कहीं दुबली हो गई हो। सुना है, कालिदास उज्जयिनी जा रहा है !

अम्बिका : मैं नहीं जानती।

[विलोम जैसे उसकी बात न सुनकर झरोखे के निकट चला जाता है।]

विलोम : राज्य की ओर से उसका सम्मान होगा ! कालिदास राजकवि के रूप में उज्जयिनी में रहेगा ! मैं समझता हूँ कि उसके जाने से पूर्व ही उसका और मल्लिका का परिणयन हो जाना चाहिये। अन्यथा।...इस सम्बन्ध में

तुमने सोचा तो होगा ?

[अम्बिका क्षण-भर माथे को हाथ से पकड़े रहती है।]

अम्बिका : मैं इस समय कुछ भी नहीं सोचना चाहती।

विलोम : तुम, मल्लिका की मां, इस विषय में सोचना नहीं चाहतीं ? आश्चर्य है !

अम्बिका : मैंने तुमसे कहा है विलोम, तुम चले जाओ।

[विलोम झरोखे की ओर पीठ करके खड़ा हो जाता है।]

विलोम : कालिदास उज्जयिनी चला जाएगा ! और मल्लिका, जिसका नाम उसके कारण सारे प्रान्तर में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहाँ पड़ी रहेगी ? क्यों अम्बिका ?

[अम्बिका कुछ न कहकर आँखों को आँचल से दबाये हुए आसन पर बैठ जाती है। विलोम घूमकर उसके सामने आ जाता है।]

क्यों ? तुमने इतने वर्ष यह सब पीड़ा क्या इसी दिन के लिये सही है ? दूर से देखनेवाला ही अनुभव कर सकता है कि इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या-क्या बीता है ? समय ने तुम्हारे मन, शरीर और आत्मा की इकाई को तोड़कर रख दिया है। तुमने तिल-तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो। और आज जबकि उसके लिये जीवन-भर के अभाव का प्रश्न सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहतीं ?

अम्बिका : तुम यह सब सुनाकर मेरा दुःख कम नहीं कर रहे हो विलोम ! मैं अनुरोध करती हूँ कि तुम इस समय मुझे

अकेली रहने दो।

विलोम : इस समय मैं अपना तुम्हारे पास होना बहुत आवश्यक समझता हूँ अम्बिका! मैं ये सब बातें तुम्हें नहीं, उसे सुनाने के लिए आया हूँ। मैं आशा कर रहा हूँ कि वह मल्लिका के साथ अभी यहाँ आयेगा। मैंने मल्लिका को जगदम्बा के मन्दिर की ओर जाते देखा है। मैं यहीं पर उसकी प्रतीक्षा करना चाहता हूँ।

[ड्योढ़ी से आगे कालिदास और उसके पीछे मल्लिका आती है।]

कालिदास : अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी विलोम!

[विलोम को देखते ही मल्लिका की आँखों में क्रोध और वितृष्णा का भाव उमड़ आता है और वह झरोखे की ओर चली जाती है। कालिदास विलोम के निकट आ जाता है।]

मैं जानता हूँ कि तुम कहाँ, किस समय और क्यों मेरे साक्षात्कार के लिये उत्सुक होते हो।...कहो, आजकल किसी नये छन्द का अभ्यास कर रहे हो?

विलोम : छन्दों का अभ्यास मेरी वृत्ति नहीं है।

कालिदास : मैं जानता हूँ कि तुम्हारी वृत्ति दूसरी है।

[क्षण-भर उसकी आँखों में देखता रहता है।]

इसी वृत्ति ने सम्भवत: छन्दों का अभ्यास सर्वथा छुड़ा दिया है।

विलोम : आज निस्सन्देह कुछ छन्दों के अभ्यास पर गर्व कर सकते हो।

[उल्मुक के निकट जाकर उसके काष्ठ को सहलाने लगता है। उल्मुक का प्रकाश उसके मुख पर पड़ता है।]

सुना है, राजधानी से निमन्त्रण आया है।

कालिदास : सुना मैंने भी है। तुम्हें दुःख हुआ ?

विलोम : दुःख ? हाँ, हाँ, बहुत। एक मित्र के बिछुड़ने का किसे दुःख नहीं होता ?···कल ब्राह्म मुहूर्त में ही चले जाओगे ?

कालिदास : यह मैं नहीं जानता।

विलोम : मैं जानता हूँ। आचार्य कल ब्राह्म मुहूर्त में ही लौट जाना चाहते हैं। राजधानी के वैभव में जाकर ग्राम-प्रान्तर को भूल तो नहीं जाओगे ?

[एक दृष्टि मल्लिका पर डालकर फिर उसकी ओर देखता है।]

सुना है, वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है। वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं···रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्यान्य विलास-भूमियाँ !

[मल्लिका के मुख पर बहुत कठोरता आ जाती है।]

मल्लिका : आर्य विलोम, यह समय और स्थान निस्सन्देह इन बातों के लिए नहीं है। मैं इस समय आपको यहाँ देखने की आशा नहीं कर रही थी।

विलोम : मैं जानता हूँ कि तुम इस समय मुझे यहाँ देखकर प्रसन्न नहीं हो। परन्तु मैं अम्बिका से मिलने आया था। बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई। यह कोई ऐसी अप्रत्याशित बात नहीं है।

कालिदास : विलोम का कुछ भी करना अप्रत्याशित नहीं है। हाँ, कई कुछ न करना अप्रत्याशित हो सकता है।

विलोम : यह वास्तव में प्रसन्नता का विषय है कालिदास, कि हम दोनों एक-दूसरे को इतनी अच्छी तरह समझते हैं। निस्सन्देह मेरी प्रकृति में ऐसा कुछ नहीं है, जो तुमसे छिपा हो।

[क्षण-भर कालिदास की आँखों में देखता रहता है।]

विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास।...और कालिदास ? एक सफल विलोम। हम कहीं एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।

[उल्मुक के पास से हटकर कालिदास के पार्श्व में आ जाता है।]

कालिदास : निस्सन्देह।...सभी विपरीत एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।

विलोम : अच्छा है, तुम इस सत्य को स्वीकार करते हो। मैं उस निकटता के अधिकार से तुमसे एक प्रश्न पूछ सकता हूँ ?...सम्भवत: फिर कभी तुमसे बात करने का अवसर प्राप्त न हो। एक दिन का व्यवधान तुम्हें हमसे बहुत दूर कर देगा न।

कालिदास : वर्षों का व्यवधान भी विपरीत को विपरीत से दूर नहीं करता।...मैं तुम्हारा प्रश्न सुनने के लिए उत्सुक हूँ।

[विलोम बहुत पास आकर पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रख देता है।]

विलोम : मैं जानना चाहता हूँ कि तुम अभी तक वही कालिदास हो न ?

[अर्थपूर्ण दृष्टि से अम्बिका की ओर देखता है।]

कालिदास : मैं तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझा।

[उसका हाथ अपने कन्धे से हटा देता है।]

विलोम : मेरा अभिप्राय यह है कि तुम अभी तक वही व्यक्ति हो न जो कल तक थे ?

[मल्लिका आवेश में झरोखे के पास से उधर को बढ़ आती है।]

मल्लिका : आर्य विलोम, मैं इस प्रकार की अनर्गलता को क्षम्य नहीं समझती।

विलोम : अनर्गलता ?

[टहलकर अम्बिका के निकट आ जाता है। कालिदास खिन्न भाव से दो-एक पग दूसरी ओर चला जाता है।]

इसमें अनर्गलता क्या है ? मैं बहुत सार्थक प्रश्न पूछ रहा हूँ। क्यों कालिदास ! मेरा प्रश्न सार्थक नहीं है ?...क्यों अम्बिका ?

[अम्बिका अव्यवस्थित भाव से उठ खड़ी होती है।]

अम्बिका : मैं इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती और न ही जानना चाहती हूँ।

[अन्दर की ओर चल देती है।]

विलोम : ठहरो अम्बिका !

[अम्बिका रुककर उसकी ओर देखती है।]

कल तक ग्राम-प्रान्तर में कालिदास और मल्लिका के

सम्बन्ध को लेकर बहुत कुछ सुना जाता रहा है ।

[मल्लिका आवेश में एक पग और आगे आ जाती है ।]

मल्लिका : आर्य विलोम, आप···!

विलोम : उस आधार को दृष्टि में रखते हुए क्या यह उचित नहीं है कि कालिदास यह स्पष्ट कर दे कि उसे उज्जयिनी अकेले ही जाना है या···

मल्लिका : कालिदास आपके किसी भी प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं हैं ।

विलोम : मैं कब कहता हूँ कि बाध्य है ! परन्तु सम्भव है कि कालिदास का अन्त:करण उसे उत्तर देने के लिए बाध्य करे । क्यों कालिदास ?

[कालिदास मुड़ पड़ता है । दोनों एक-दूसरे के सम्मुख आ जाते हैं ।]

कालिदास : मैं तुम्हारी प्रशंसा करने के लिए अवश्य बाध्य हूँ । तुम दूसरों के घर में ही नहीं, उनके जीवन में भी अनधिकार प्रवेश कर जाते हो ।

विलोम : अनधिकार प्रवेश···? मैं···? क्यों अम्बिका, तुम्हें कालिदास की यह बात कहाँ तक संगत प्रतीत होती है कि मैं, विलोम, दूसरों के जीवन में अनधिकार प्रवेश करता हूँ ?

अम्बिका : मैं कह चुकी कि मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है । [अन्दर चली जाती है ।]

विलोम : बस चल ही दीं···? अच्छा कालिदास, तुम्हीं बताओ, तुम्हें यह अपनी बात कहाँ तक संगत प्रतीत होती है ? मैंने किसके जीवन में अनधिकार प्रवेश किया है ? चलो

ग्राम-प्रान्तर में चलकर किसीसे पूछ लें···

[विदग्धता[1]-पूर्ण दृष्टि से उसे देखता है। फिर उल्मुक के पास जाकर उसे आधार से निकालकर हाथ में ले लेता है।]

तो तुम अपने अन्तःकरण से भी मेरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं हो ! सम्भवतः प्रश्न ही ऐसा है···!

कालिदास : तुम कुछ भी अनुमान लगाने के लिए स्वतन्त्र हो । मैं अभी इतना ही जानता हूँ कि मुझे ग्राम-प्रान्तर छोड़कर उज्जयिनी जाने का तनिक भी मोह नहीं है ।

[विलोम उल्मुक कालिदास के मुख के निकट ले आता है।]

विलोम : निस्सन्देह ! तुम्हें ऐसा मोह क्यों होगा ? साधारण व्यक्ति को हो सकता है, तुम्हें क्यों होगा ? परन्तु मैं केवल इतना जानना चाहता था कि यदि ऐसा हो—क्षण-भर के लिए स्वीकार कर लिया जाये कि तुम जाने का निश्चय कर लो—तो उस स्थिति में क्या यह उचित नहीं है कि···

[मल्लिका कालिदास के और उसके बीच में आ जाती है। उल्मुक का प्रकाश उसके मुख पर पड़ने लगता है।]

मल्लिका : आर्य विलोम, आप अपनी सीमा से बाहर जाकर बात कर रहे हैं। मैं बालिका नहीं हूं, अपना शुभ-अशुभ सब समझती हूँ।···आप सम्भवतः यह अनुभव नहीं कर रहे कि आप यहाँ इस समय एक अनचाहे अतिथि

---

१. विदग्धता—चतुरता, धूर्तता

के रूप में उपस्थित हैं।

विलोम : यह अनुभव करने की मैंने आवश्यकता नहीं समझी। तुम मुझसे घृणा करती हो, मैं जानता हूँ। परन्तु मैं तुमसे घृणा नहीं करता। मेरे यहाँ होने के लिए इतना ही कारण पर्याप्त है।

[उल्मुक पुनः कालिदास के निकट ले जाता है।]

और एक बात कालिदास से भी कहना चाहता था।

[अर्थपूर्ण दृष्टि से कालिदास को देखकर फिर मल्लिका की ओर देखता है।]

तुम कालिदास के बहुत निकट हो, परन्तु मैं कालिदास को तुमसे अधिक जानता हूँ।

[पुनः एक-एक करके दोनों ओर देखता है और ड्योढ़ी की ओर चल देता है। ड्योढ़ी के पास से मुड़कर फिर कालिदास की ओर देखता है।]

तुम्हारी यात्रा शुभ हो कालिदास! तुम जानते हो कि विलोम तुम्हारा भी हितचिन्तक है।

कालिदास : मुझसे अधिक कौन जान सकता है?

[विलोम के कण्ठ से तिरस्कारपूर्ण हँसी का स्वर निकलता है और वह मल्लिका की ओर देखता है।]

विलोम : अनचाहा अतिथि सम्भवतः फिर भी कभी आ पहुँचे। तब तक के लिए भी क्षमा चाहते हुए...

[सोत्प्रास[1] मुस्कराकर चला जाता है। कालिदास क्षण-भर मल्लिका की ओर देखता रहता है। फिर झरोखे के निकट चला जाता है।]

---

१. सोत्प्रास—व्यंग्यपूर्वक

मल्लिका : फिर उदास हो गये ?

[कालिदास झरोखे से बाहर की ओर देखता रहता है]

देखो, तुम मुझे वचन दे चुके हो।

[कालिदास सहसा उसके निकट आ जाता है।]

कालिदास : तुम फिर एक बार सोचो मल्लिका ! प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का ही नहीं है। उससे कहीं बड़ा प्रश्न मेरे सामने है।

मल्लिका : और वह प्रश्न मैं हूँ।...हूँ न ?

[उसे बाँहों से पकड़कर आसन पर बिठा देती है।]

यहाँ बैठो। तुम मुझे जानते हो। हो न ?

[कालिदास उसकी ओर देखता है।]

तुम समझते हो कि तुम इस अवसर को ठुकराकर यहाँ रह जाओगे तो मुझे सुख होगा ?

[उमड़ते हुए आँसुओं को दबाने के लिए आँखें झपकती और ऊपर की ओर देखने लगती है।]

मैं जानती हूँ कि तुम्हारे चले जाने पर मेरे अन्तर को एक रिक्तता छा लेगी, और बाहर भी सम्भवतः बहुत सूना प्रतीत होगा। फिर भी मैं अपने साथ छल नहीं कर रही।

[मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई उसकी ओर देखती है।]

मैं हृदय से कहती हूँ कि तुम्हें जाना चाहिए।

कालिदास : चाहता हूँ कि तुम इस समय अपनी आँखें देख सकतीं।

मल्लिका : मेरी आँखें इसलिए गीली हैं कि तुम मेरी बात नहीं

समझते। तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर हो सकते हो ?···यहाँ ग्राम-प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवकाश कहाँ मिलेगा ? यहाँ लोग तुम्हें समझ नहीं पाते हैं। वे सामान्य की कसौटी पर ही तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं।

[अपनी कुहनियों पर ठोड़ी रख लेती है।]

विश्वास करते हो न कि मैं तुम्हें जानती हूँ ? जानती हूँ कि कोई भी रेखा तुम्हें घेर ले तो तुम घिर जाओगे। मैं तुम्हें घेरना नहीं चाहती। इसीलिए कहती हूँ कि तुम जाओ।

कालिदास : तुम मुझे पूरी तरह नहीं समझ रही हो मल्लिका ! प्रश्न तुम्हारे घेरने का भी नहीं है।

[मल्लिका शब्दों की चुभन का अनुभव करके भी अपनी मुद्रा स्वाभाविक बनाये रखने का प्रयत्न करती है। कालिदास जैसे सोचता-सा उठ खड़ा होता है और टहलने लगता है।]

मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम-प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरीतिमा है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।

[रुककर मल्लिका की ओर देखता है।]

यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से ऊखड़ जाऊँगा।

[मल्लिका आसन पर कुहनी रखकर उससे टेक लगा लेती है।]

मल्लिका : यह क्यों नहीं सोचते हो कि नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे।

कालिदास : नई भूमि सुखा भी तो दे सकती है ?

[फिर टहलने लगता है।]

मल्लिका : कोई भूमि ऐसी नहीं जिसके अन्तर में कहीं कोमलता न हो। तुम्हारी प्रतिभा उस कोमल का स्पर्श अवश्य पा लेगी।

कालिदास : और उस जीवन की अपनी अपेक्षाएँ भी होंगी···

[मल्लिका उठकर उसके निकट आ जाती है और उसके हाथ पकड़ लेती है।]

मल्लिका : यह क्या आवश्यक है कि तुम उन सब अपेक्षाओं का निर्वाह करो ? तुम दूसरों के लिये नयी अपेक्षाओं की सृष्टि कर सकते हो।

कालिदास : फिर भी कई-कई आशंकाएँ उठती हैं। मुझे हृदय में उत्साह का अनुभव नहीं होता।

मल्लिका : मेरी ओर देखो—

[कुछ क्षण कालिदास उसकी आँखों में देखता रहता है।]

अब भी उत्साह का अनुभव नहीं होता···? विश्वास करो कि तुम यहाँ से जाकर भी यहाँ से विभिन्न नहीं होओगे। यहाँ की वायु, यहाँ के मेघ और यहाँ के हरिण, इन सबको तुम साथ ले जाओगे···। और मैं भी तुमसे दूर नहीं रहूँगी।

जब भी तुम्हारे निकट होना चाहूँगी, पर्वत-शिखर पर चली जाऊँगी और उड़कर आते हुए मेघों में घिर जाया करूंगी।

[बिजली कौंधती है और मेघ-गर्जन सुनाई देता है।]

सम्भवत: फिर वर्षा होगी···। यों भी बहुत अँधेरा हो गया है। आचार्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

कालिदास : मुझे जाने के लिए कह रही हो ?

मल्लिका : हाँ ! देखना, मैं तुम्हारे पीछे प्रसन्न रहूँगी, बहुत घूमूंगी और हर संध्या को जगदम्बा के मन्दिर में सूर्यास्त देखने जाया करूँगी···

कालिदास : इसका अर्थ है कि तुमसे विदा लूं ?

[मल्लिका जैसे सहसा चिहुँक उठती है।]

मल्लिका : नहीं ! विदा तुम्हें नहीं दूंगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।······ जाओ।

[कालिदास क्षण-भर आँखें मूंदे रहता है। फिर झटके से चला जाता है। मल्लिका हाथों में मुँह छिपाये आसन पर जा बैठती है। तीव्र मेघ-गर्जन सुनाई देता है और साथ वर्षा का शब्द सुनाई देने लगता है। मल्लिका अपने को रोकने का प्रयत्न करती हुई भी सिसक उठती है। अम्बिका अन्दर से आकर उसके सिर पर हाथ रख देती है और उसका सिर ऊपर उठाती है।]

अम्बिका : मल्लिका !

[मल्लिका अम्बिका की ओर देखती है और झरोखे

के पास जाकर उससे सिर टिका लेती है।]

अम्बिका : तुम स्वस्थ नहीं हो मल्लिका, चलो, अन्दर चलकर विश्राम कर लो।

[मल्लिका सिसकियाँ दबाने का प्रयत्न करती हुई उसी तरह खड़ी रहती है।]

मल्लिका : मुझे अभी यहीं रहने दो माँ! मैं अस्वस्थ नहीं हूँ…। देखो माँ! चारों ओर कितने गहरे मेघ घिरे हैं। कल ये मेघ उज्जयिनी की ओर उड़ जायेंगे!

[पुनः हाथों में मुँह छिपाकर सिसक उठती है। अम्बिका उसके निकट आकर उसे अपने से सटा लेती है।]

अम्बिका : रोओ नहीं मल्लिका!

मल्लिका : मैं रो नहीं रही हूँ माँ! मेरी आँखों से जो बरस रहा है, यह दुःख नहीं है। यह सुख है माँ, सुख…!

[अम्बिका के वक्ष में मुँह छिपा लेती है। पुनः मेघ-गर्जन सुनाई देता है और वर्षा का स्वर तीव्र हो उठता है। प्रकाश क्षीण हो जाता है और पर्दा धीरे-धीरे गिरता है।]

अंक २

कुछ वर्षों के अनन्तर

[पर्दा उठने पर वही प्रकोष्ठ दिखाई देता है।

प्रकोष्ठ की अवस्था में पहले से कहीं अन्तर आ गया है। लिपाई कई स्थानों से उखड़ रही है। गेरू से बने हुए स्वस्तिक, शंख और कमल अब बुझे-बुझे-से हैं। चूल्हे के पास पहले से बहुत कम बरतन हैं। कुम्भ केवल दो हैं और उनपर बीच तक काई जमी है। झरोखे के पास के आसन पर कुछ लिखे हुए भोजपत्र बिखरे हैं, कुछ भोजपत्र एक रेशमी वस्त्र में बँधे हैं। आसन के निकट एक टूटा मोढ़ा है, जिसपर भोजपत्रों को सीकर बनाया गया एक ग्रन्थ रखा है।

चूल्हे के निकट के कोने में रस्सी बँधी है, जिसपर कुछ वस्त्र सूखने के लिए फैलाये गये हैं। अधिकांश वस्त्र फटे हुए हैं या दूसरे रंगों के वस्त्र-खंडों से जोड़े गए हैं।

एक टूटा मोढ़ा ड्योढ़ी के द्वार के पार्श्व में रखा है। चौकी एक ही है जिसपर बैठी मल्लिका खरल में औषध पीस रही है। अन्दर के प्रकोष्ठ में बिछे तल्प का कोना उसी प्रकार दिखायी देता है। अम्बिका तल्प पर लेटी है। बीच-बीच में वह पार्श्व बदल लेती है। निक्षेप बाहर से आता है। मल्लिका हाथ रोककर अपना बिखरा हुआ अंशुक ठीक करती है।]

निक्षेप : अब अम्बिका का स्वास्थ्य कैसा है ?

मल्लिका : अभी वैसे ही ज्वर आता है।

निक्षेप : पहले से कुछ भी अन्तर नहीं है ?

मल्लिका : प्रतीत तो नहीं होता।

निक्षेप : निरन्तर दो वर्ष से एक-सा ज्वर !

[मल्लिका एक ठंडी साँस लेकर खरल में पीसी हुई औषध पत्थर के कटोरे में डालने लगती है। निक्षेप द्वार के पास से मोढ़ा खींचकर उसके निकट बैठ जाता है।]

वस्तुत: अम्बिका बहुत चिन्ता करती हैं।

मल्लिका : औषध भी तो ठीक से नहीं खातीं।

[औषध में दूध और मधु मिलाकर हिलाने लगती है। निक्षेप अपनी उँगलियाँ उलझाकर झटकता है।]

निक्षेप : तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ?

मल्लिका : ठीक है।

निक्षेप : दुबली हो गई हो।...बहुत दिनों से राजधानी की ओर से कोई व्यक्ति नहीं आया।

[मल्लिका आँखें बचाती हुई अधिक तत्परता से औषध को हिलाने लगती है।]

कई बार सोचता हूँ कि स्वयं उज्जयिनी जाकर उनसे मिल आऊँ।

मल्लिका : क्यों ?

निक्षेप : कई-कई बातें करना चाहता हूँ। कई-कई बार मुझे लगता है कि मेरा भी कुछ अपराध है।

[मल्लिका गम्भीर आश्चर्य की मुद्रा में उसकी ओर देखती है।]

मल्लिका : किस बात में ? [निक्षेप लम्बी साँस लेता है।]

निक्षेप : बात तुम समझती हो।···मैंने आशा नहीं की थी कि उज्जयिनी जाकर कालिदास इस प्रकार वहाँ के ही हो जायेंगे।

मल्लिका : मुझे तो प्रसन्नता है कि वे वहाँ जाकर इतने व्यस्त हैं। यहाँ उन्होंने केवल 'ऋतुसंहार' की ही रचना की है। वहाँ रहकर उन्होंने कई नये काव्यों की रचना की है। दो वर्ष पूर्व जो व्यवसायी आये थे, उन्होंने 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत' की प्रतियाँ मुझे ला दी थीं। वे कहते थे, उनके एक और बृहत् काव्य की बहुत चर्चा है, परन्तु उसकी प्रति उन्हें नहीं मिल सकी।

निक्षेप : यों तो सुना है, उन्होंने कुछ नाटकों की भी रचना की है जो उज्जयिनी की रंगशालाओं में खेले गये हैं। फिर भी ··

मल्लिका : फिर भी क्या ?

निक्षेप : मुझे : दुःख होता है। इन सबके अतिरिक्त उन्हीं व्यवसायियों के मुख से और भी तो कई बातें सुनी थीं···

मल्लिका : कोई व्यक्ति उन्नति करता है तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद अनायास जुड़ने लगते हैं।

निक्षेप : मैं अपवाद की बात नहीं कहता।

[उठकर टहलने लगता है।]

परन्तु यह भी तो सुना था कि गुप्तवंश की राजदुहिता

से उनका परिणय हो गया है···

मल्लिका : तो उसमें दोष क्या है ?

निक्षेप : एक दृष्टि से देखें तो दोष नहीं भी है। परन्तु यहाँ रहते हुए उनका यह आग्रह था कि वे जीवन-भर विवाह नहीं करेंगे। [रुककर उसकी ओर देखता है।]
उस आग्रह का क्या हुआ ? उन्होंने यह नहीं सोचा कि उनके इस आग्रह की रक्षा के लिए तुमने···?

मल्लिका : उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण प्राणियों में से हूँ। वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही संसर्ग चाहिए था।···सुना था, राजदुहिता बहुत विदुषी हैं।

निक्षेप : हाँ, सुना था। बहुत शास्त्र-दर्शन पढ़ी है। मैंने कहा न कि एक दृष्टि से देखें तो इसमें कोई दोष नहीं, परन्तु दूसरी दृष्टि से देखता हूँ तो बहुत ग्लानि होती है।

मल्लिका : इसके विपरीत मुझे अपने से ग्लानि होती है, यह कि, ऐसी मैं, उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा भी बन सकती थी। आपके नियोजन से मैं उन्हें जाने के लिए प्रेरित न करती तो कितनी बड़ी क्षति होती ?

निक्षेप : यही तो सोचता हूँ कि मेरे नियोजन से तुम ऐसा न करतीं तो सम्भवतः आज तुम्हारा जीवन यह न होता।

मल्लिका : मेरे जीवन में पहले से क्या अन्तर आया है ? इतना ही कि पहले माँ काम करती थीं, अब वे रुग्ण हैं, मैं काम करती हूँ।

निक्षेप : बाहर से तो इतना ही अन्तर है।

मल्लिका : केवल यही अन्तर है। [औषध लिए हुए उठ खड़ी होती है।] माँ को औषध दे दूँ, अभी आती हूँ।

[अन्दर चली जाती है और अम्बिका को सहारे से उठाकर औषध दे देती है। अम्बिका औषध पीकर कटुता के अनुभव से सिर हिलाती है।
निक्षेप टहलता हुआ झरोखे के निकट चला जाता है। बाहर घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई देता है, जो निकट आकर दूर चला जाता है। निक्षेप झरोखे से सटा देखता रहता है। अम्बिका औषध पीकर लेट जाती है। मल्लिका कटोरा लिये हुए बाहर आती है और किवाड़ को पकड़े हुए अम्बिका की ओर देखती है।]

मल्लिका : माँ, ठंड लगती हो तो किवाड़ बन्द कर दूँ?

[अम्बिका धीरे से सिर हिलाती है। मल्लिका किवाड़ बन्द कर देती है और कटोरे को चूल्हे के निकट रख देती है। दो-एक जूठे बरतन वहाँ पहले भी पड़े हैं। निक्षेप झरोखे के पास से हटकर आता है।]

निक्षेप : लगता है कि आज फिर कुछ लोग बाहर से आए हैं।

मल्लिका : कौन लोग?

निक्षेप : सम्भवतः राज्य के कर्मचारी है। दो वैसी ही आकृतियाँ अभी मैंने देखी हैं, जैसी तब देखी थीं, जब वे आचार्य कालिदास को लेने आए थे।

[मल्लिका थोड़ा सिहर जाती है।]

मल्लिका : वैसी आकृतियाँ?

[अपने भाव को दबाती हुई थोड़ा हँसने का प्रयत्न करती है।]

जानते हैं, माँ इनके सम्बन्ध में क्या कहती हैं ? वे कहती हैं कि जब भी यहाँ ये आकृतियाँ दिखाई देती हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता है। कभी युद्ध, कभी महामारी।... परन्तु पिछली बार तो कुछ नहीं हुआ।

निक्षेप : नहीं हुआ ?

[मल्लिका उससे आँखें बचाती हुई गीले वस्त्रों को देखने में व्यस्त हो जाती है।]

मल्लिका : क्या हुआ ? ...और जो हुआ वह तो अच्छा ही था।

[दो-एक वस्त्रों को उतारकर और देखकर फिर रस्सी पर फैला देती है।]

वायु में आजकल इतनी नमी रहती है कि वस्त्र घण्टों तक नहीं सूखते।

[फिर टापों का शब्द सुनाई देने लगता है। निक्षेप शीघ्रता से झरोखे के निकट चला जाता है। सहसा उसके मुख से आश्चर्यपूर्ण ध्वनि निकल पड़ती है।]

निक्षेप : हैं, हैं ? ...नहीं, परन्तु नहीं कैसे !

[टापों का शब्द दूर चला जाता है। निक्षेप बहुत उत्तेजित-सा झरोखे के पास से हटकर आता है। मल्लिका उसकी ओर देखती है।]

मल्लिका : सहसा उत्तेजित क्यों हो उठे आर्य निक्षेप ?

निक्षेप : मैंने एक और आकृति को घोड़े पर जाते देखा है।

मल्लिका : तो क्या हुआ ? आप भी माँ की तरह व्यर्थ में अनिष्ट की आशंका करने लगे।

निक्षेप : परन्तु वह बहुत पहचानी हुई आकृति है मल्लिका !

मल्लिका : पहचानी हुईआकृति ?

निक्षेप : मुझे विश्वास है कि वे स्वयं कालिदास हैं।

[मल्लिका हाथ के वस्त्र को पकड़े हुए स्तम्भित-सी हो जाती है। उसका स्वर बैठ जाता है।]

मल्लिका : कालिदास! ...यह कैसे सम्भव है?

निक्षेप : परन्तु मैंने अपनी आँखों से देखा है। वे घोड़ा दौड़ाते हुए पर्वत-शिखर की ओर गये हैं। इस राजसी वेशभूषा में कोई और उन्हें न पहचान पाये, निक्षेप की आंखें भ्रांत नहीं हो सकतीं।.. मैं अभी जाकर देखता हूँ। वे राज्य-कर्मचारी भी अवश्य उन्हींके साथ आये होंगे।

[उसी उत्तेजना में बाहर चला जाता है।]

मल्लिका : वे आये हैं और पर्वत-शिखर की ओर गए हैं?

[अपनी उँगली को दाँत से काटती है और पीड़ा का अनुभव होने पर यन्त्रचालित-सी झरोखे के पास चली जाती है। ड्योढ़ी से रंगिणी और संगिनी प्रवेश करती हैं। मल्लिका नूपुरों के शब्द से चकित होकर उस ओर देखती है। रंगिणी संगिनी को पीछे से आगे करती है।]

रंगिणी : इनसे पूछो कि क्या हम अन्दर आ सकती हैं?

[संगिनी उसे आगे करती हुई स्वयं पीछे हट जाती है।]

संगिनी : तुम पूछो!

[मल्लिका झरोखे से हटकर उनके निकट आती है।]

रंगिणी : अच्छा, मैं ही पूछती हूँ।...सुनिये, यह आपका घर है?

मल्लिका : हाँ, हाँ आइये।...आप मेरे यहाँ आयी हैं?

[रंगिणी और संगिनी दोनों अन्दर आ जाती हैं और कौतूहलपूर्ण दृष्टि से इधर-उधर देखती हैं।]

रंगिणी : हम विशेष रूप से किसीके यहाँ नहीं ग्रायी हैं, समझ लीजिये कि यों ही ग्रायी हैं, ग्राम-प्रदेश में घूमती हुई।

संगिनी : हम यहाँ के घर देखना चाहती हैं।

रंगिणी : ग्रौर यहाँ के जीवन का ग्रध्ययन करना चाहती हैं।

संगिनी : पहले मैं ग्रापको परिचय दे दूँ। ये हैं शुभश्री रंगिणी, उज्जयिनी के नाट्य-केन्द्र में नृत्य का अभ्यास करती हैं। नाटक लिखने में भी ग्रापकी रुचि है।

रंगिणी : और ये संगिनी—उस केन्द्र में मृदंग और वीणा-वादन सीखती हैं। बहुत सुन्दर प्रणय-गीत लिखती हैं। अब गद्य की ओर आ रही हैं। और आप···?

[उत्सुकता से मल्लिका की ग्रोर देखती है। मल्लिका चकित ग्रौर ग्रप्रतिभ-सी खड़ी रहती है।]

संगिनी : आपने अपना परिचय नहीं दिया ?

मल्लिका : मेरा परिचय कुछ भी नहीं है। आ···आप आइये। यहाँ ग्रासन पर बैठिये।

संगिनी : हम बैठने के लिए नहीं, केवल अध्ययन करने के लिए ग्रायी हैं। इस स्थान को ग्राप लोग क्या कहते हैं ?

मल्लिका : किस स्थान को ?

रंगिणी : इनका अभिप्राय है इस सारे स्थान को जहाँ इस समय हम हैं। उज्जयिनी में हम इसे प्रकोष्ठ कहते हैं। यहाँ क्या कहते हैं ?

मल्लिका : प्रकोष्ठ।

रंगिणी : प्रकोष्ठ को आप लोग भी प्रकोष्ठ कहते हैं। और···

[कुम्भों के निकट जाकर एक कुम्भ को छूती है।]

इसको ?

मल्लिका : कुम्भ ।

रंगिणी : कुम्भ ? प्रकोष्ठ को प्रकोष्ठ और कुम्भ को कुम्भ ?

[निराशा से कंधे हिलाती है ।]

संगिनी : देखिये, यहाँ के कुछ स्थानीय शब्द नहीं हैं ?

[मल्लिका अवाक्‌भाव से उनकी ओर देखती है ।]

मल्लिका : स्थानीय शब्द ?

संगिनी : जैसे पतंजलि ने लिखा है कि यद्वा को कुछ लोग यर्वा बोलते हैं और तद्वा को तर्वा । यर्वाणस्तर्वाण: ऋषयो बभूवु: ।

मल्लिका : मुझे इतना ज्ञान नहीं है।

[संगिनी कुछ निराश-सी आसन पर बैठ जाती है। रंगिणी घूमकर प्रकोष्ठ की एक-एक वस्तु का निरीक्षण करती रहती है। मल्लिका संगिनी के निकट चली जाती है ।]

संगिनी : देखिए, हम कुछ ऐसी बातें जानना चाहती हैं जिनका सम्बन्ध यहाँ के और केवल यहाँ के जीवन से हो। आपके घर और वस्त्र तो लगभग हमारे जैसे ही हैं । यहाँ के जीवन की अपनी विशेषता क्या है ?

मल्लिका : यहाँ के जीवन की विशेषता ?

[झरोखे की ओर मुँह करके पल-भर देखती रहती है ।]

मैं नहीं जानती ।...हमारा जीवन हर दृष्टि से बहुत साधारण है।

संगिनी : यह मैं नहीं मान सकती। इस प्रदेश ने कालिदास

जैसी असाधारण प्रतिभा को जन्म दिया है। यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु असाधारण होनी चाहिए।

[रंगिणी चूल्हे के आसपास की सब वस्तुओं की परीक्षा करके तथा एक बार अन्दर झाँककर उस ओर आती है।]

रंगिणी : देखिये, मैं आपको समझाती हूँ। बात वस्तुतः यह है कि राजकीय नियोजन से हम दोनों कवि कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही हैं। आप समझ सकती हैं कि यह कितना बड़ा और महत्त्वपूर्ण कार्य है। परन्तु इस प्रदेश में घूमकर हम तो लगभग निराश हो रही हैं। यहाँ कुछ सामग्री ही नहीं है।

संगिनी : अच्छा, यहाँ के कुछ वनस्पतियों के नाम बताइये।

मल्लिका : कैसे वनस्पति?

संगिनी : कैसे वनस्पति? [सोचने लगती है।]
जैसे कालिदास ने कुमारसम्भव में लिखा है—'भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च'—ये प्रकाश छोड़नेवाली ओषधियाँ कौन-सी हैं?

मल्लिका : ओषधियाँ प्रकाश नहीं छोड़तीं।

[संगिनी सहसा खड़ी हो जाती है।]

संगिनी : ओषधियाँ प्रकाश नहीं छोड़तीं? आपका अभिप्राय है कि कालिदास ने जो लिखा है, वह मिथ्या है?

मल्लिका : उन्होंने कुछ भी मिथ्या नहीं लिखा। उन्होंने तो लिखा है कि...

रंगिणी : जाने दो संगिनी। ये यहाँ के जीवन के सम्बन्ध में

विशेष कुछ नहीं जानतीं।

[संगिनी निराशा से कंधे हिलाकर उठ खड़ी होती है।]

संगिनी : अच्छा, आपका बहुत समय नष्ट किया। क्षमा कीजियेगा। आओ रंगिणी।

[दोनों चली जाती हैं। मल्लिका ड्योढ़ी के किवाड़ मिला देती है। आसन के निकट जाकर वह नीचे बैठ जाती है और बिखरे हुए पृष्ठों पर सिर टिका देती है। उसकी आँखें मुँद जाती हैं और एक लम्बी साँस निकल पड़ती है।]

मल्लिका : आज वर्षों के अनन्तर तुम लौटकर आये हो! सोचती थी कि तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अंधेरा-सा दिन होगा, वैसे ही एक बार मैं वर्षा से भीगूँगी और फिर तुमसे कहूँगी कि देखो, मैंने तुम्हारी सब रचनाएँ पढ़ी हैं···

[कुछ पृष्ठ आसन से उठाकर हाथ में ले लेती है।]

उज्जयिनी की ओर जानेवाले व्यवसायियों से कितना-कितना अनुरोध करके मैंने तुम्हारी रचनाएँ मँगवायी हैं। ···सोचती थी कि मैं तुम्हें मेघदूत की पंक्तियाँ गा-गाकर सुनाऊँगी। किसी पर्वत-शिखर से घण्टा-ध्वनियाँ गूँज उठेंगी और मैं अपनी यह भेंट तुम्हारे हाथों में रख दूँगी ··

[मोढ़े पर रखे ग्रन्थ को उठा लेती है।]

कहूँगी कि देखो, यह तुम्हारी नई रचना के लिए है। ये कोरे पृष्ठ मैंने अपने हाथों से बनाकर सिये हैं। इनपर तुम अब जो भी लिखोगे, उसमें मुझे अनुभव होगा कि मैं भी

कहीं हूँ, मेरा भी कुछ है।

[निःश्वास छोड़कर ग्रन्थ को रख देती है।]

परन्तु आज तुम आए हो तो सारा वातावरण और है। और···और नहीं सोच पाती कि तुम भी वही हो या···

[कोई ड्योढ़ी के किवाड़ खटखटाता है। मल्लिका अपने को झटककर उठ खड़ी होती है और जाकर किवाड़ खोल देती है। अनुस्वार और अनुनासिक साथ-साथ खड़े दिखाई देते हैं। मल्लिका कुछ असमंजस में पड़ जाती है।]

अनुस्वार : मुझे विश्वास है कि मैं इस समय देवी मल्लिका के सम्मुख खड़ा हूँ।

मल्लिका : कहिये···

अनुस्वार : देव मातृगुप्त के अनुचरों का अभिवादन स्वीकार कीजिए।

[अनुस्वार और अनुनासिक दोनों झुककर अभिवादन करते हैं। मल्लिका भौचक-सी उन्हें देखती रहती है।]

मल्लिका : देव मातृगुप्त ? देव मातृगुप्त कौन है ?

अनुस्वार : ऋतुसंहार, कुमारसम्भव, मेघदूत एवं रघुवंश के प्रणेता कवीन्द्र, राजनीति-निष्णात आचार्य तथा काश्मीर के भावी शासक। देव मातृगुप्त की राजमहिषी गुप्तवंश-दुहिता परम विदुषी देवी प्रियंगुमंजरी आपके साक्षात्कार के लिए उत्सुक हैं और शीघ्र ही यहाँ आना चाहती हैं। हम उनके अनुचर आपको इसकी पूर्वसूचना देने के लिए उपस्थित हैं।

मल्लिका : ऋतुसंहार और मेघदूत आदि के प्रणेता कालिदास हैं और आप कह रहे हैं…

अनुस्वार : वे गुप्तराज की ओर से काश्मीर का शासन सँभालने जा रहे हैं। मातृगुप्त उन्हींका नया नाम है।

मल्लिका : वे काश्मीर का शासन संभालने जा रहे हैं ? और… और उनकी राजमहिषी मुझसे मिलने के लिए यहाँ आ रही हैं ?

अनुस्वार : मुझे विश्वास है कि इस गौरवपूर्ण अवसर पर आप अपने उपवेशगृह के वस्तु-विन्यास में कुछ परिवर्तन अपेक्ष्य समझेंगी। हम आपका आदेश समझते हुए इस कार्य को अभी अपने हाथों सम्पन्न किये देते हैं। आओ अनुनासिक।

[दोनों प्रकोष्ठ में आकर निरीक्षणात्मक दृष्टि से सब वस्तुओं को देखने लगते हैं। मल्लिका इस तरह एक कोने में हट जाती है जैसे वह उस घर में आगन्तुक हो। अनुनासिक आसन के निकट चला जाता है।]

अनुनासिक : मैं समझता हूँ कि यह आसन द्वार के निकट होना चाहिये।

अनुस्वार : देवी द्वार के प्रकोष्ठ में प्रवेश करेंगी और आसन द्वार के निकट होगा ?

अनुनासिक : तो उस स्थिति में इसे इसकी वर्तमान स्थिति से सात अंगुल दक्षिण की ओर हटा दिया जाय।

अनुस्वार : दक्षिण की ओर ? [नकारात्मक भाव से सिर हिलाता है।] मैं समझता हूँ कि इसकी स्थिति पाँच अंगुल उत्तर की ओर होनी चाहिए। गवाक्ष से सूर्य की किरणें सीधी इस-

पर पड़ती हैं।

अनुनासिक : मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।

अनुस्वार : मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।

अनुनासिक : तो?

अनुस्वार : तो विवादास्पद विषय होने के कारण आसन को यहीं रहने दिया जाय।

अनुनासिक : अच्छी बात है, इसे यहीं रहने दिया जाय। और ये कुम्भ? [कुम्भों के निकट चला जाता है।]

अनुस्वार : मैं समझता हूँ कि एक कुम्भ इस कोने में और दूसरा दूसरे कोने में होना चाहिये।

अनुनासिक : मैं समझता हूँ कि कुम्भ इस प्रकोष्ठ में होने ही नहीं चाहिये।

अनुस्वार : क्यों?

अनुनासिक : क्यों का कोई उत्तर नहीं।

अनुस्वार : मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।

अनुनासिक : मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।

अनुस्वार : तो?

अनुनासिक : तो कुम्भों को भी रहने दिया जाय।

[दोनों उधर चले जाते हैं जिस रस्सी पर वस्त्र सूखने के लिए फैलाये गये हैं। मल्लिका आसन के निकट जाकर बिखरे हुए पन्नों को समेट देती है और उन्हें मोढ़े पर रखकर मोढ़ा एक ओर हटा देती है, और अन्दर चली जाती है। अनुस्वार वस्त्रों को छूता है।]

अनुस्वार : ये वस्त्र?

अनुनासिक : वस्त्र अभी गीले हैं, इसलिये इन्हें नहीं हटाना चाहिए।

अनुस्वार : क्यों ?

अनुनासिक : शास्त्रीय प्रमाण ऐसा है।

अनुस्वार : कौन-सा प्रमाण है ?

अनुनासिक : यह तो मुझे स्मरण नहीं।

अनुस्वार : यह स्मरण है कि ऐसा प्रमाण है ?

अनुनासिक : हाँ।

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : तो संदिग्ध विषय है।

अनुस्वार : हाँ, तब तो अवश्य संदिग्ध विषय है।

अनुनासिक : तो संदिग्ध विषय होने से वस्त्रों को भी रहने दिया जाय।

अनुस्वार : अच्छी बात है, वस्त्रों को भी रहने दिया जाय।

अनुनासिक : किन्तु यह चूल्हा अवश्य यहाँ से हटा दिया जाना चाहिए।

अनुस्वार : चूल्हा हटाने का अर्थ है, आसपास की सब वस्तुओं को हटाया जाय। इसके लिए बहुत समय चाहिये।

अनुनासिक : और समय के अतिरिक्त बहुत धैर्य चाहिये।

अनुस्वार : और धैर्य के अतिरिक्त बहुत परिश्रम चाहिये।

अनुनासिक : और मैं समझता हूँ कि जूठे भाजनों को हाथ लगाना हमारी स्थिति के अनुकूल नहीं है।

अनुस्वार : मैं भी यही समझता हूँ।

अनुनासिक : तो इस बात में हम दोनों सहमत हैं कि चूल्हे को

न हटाया जाय ?

अनुस्वार : मैं समझता हूँ कि हम दोनों सहमत हैं।

[अनुनासिक चारों ओर दृष्टि दौड़ाता है।]

अनुनासिक : और तो कुछ शेष नहीं ?

[अनुस्वार भी चारों ओर देखता है।]

अनुस्वार : मेरे विचार में कुछ भी शेष नहीं।

अनुनासिक : नहीं, अभी शेष है।

अनुस्वार : क्या ?

अनुनासिक : यह चौकी यहाँ रास्ते में पड़ी है। यह यहाँ से हटा देनी चाहिए।

अनुस्वार : मैं इससे सहमत हूं।

अनुनासिक : तो ?

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : तो इसे हटा देना चाहिये।

अनुस्वार : हाँ, अवश्य हटा देना चाहिये।

अनुनासिक : तो ?

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : हटा दो।

अनुस्वार : मैं ?

अनुनासिक : हाँ।

अनुस्वार : तुम नहीं ?

अनुनासिक : नहीं।

अनुस्वार : क्यों ?

अनुनासिक : क्यों का कोई उत्तर नहीं।

अनुस्वार : फिर भी ?

अनुनासिक : पहले मैंने तुमसे कहा है।

अनुस्वार : किन्तु चौकी पहले देखी तुमने है।

अनुनासिक : तो ?

अनुस्वार : तो ?

अनुनासिक : हटा दो।

अनुस्वार : तुम्हीं हटा दो।

अनुनासिक : तो रहने दो।

अनुस्वार : रहने दो।

अनुनासिक : अब ?

अनुस्वार : हाँ, अब ?

अनुनासिक : एक बार फिर चारों ओर दृष्टि डाल लें।

अनुस्वार : हाँ, एक बार फिर चारों ओर दृष्टि डाल लें।

[मातुल अस्तव्यस्त-सा बाहर से आता है।]

मातुल : अधिकारीवर्ग, आपका कार्य यहाँ पूरा हो गया ?

अनुनासिक : क्यों अनुस्वार ?

अनुस्वार : हाँ, हो गया। हो गया न ? क्यों अनुनासिक ?

अनुनासिक : हाँ, हो गया। केवल एक दृष्टि डालना शेष है।

अनुस्वार : हाँ, केवल एक दृष्टि डालना शेष है।

मातुल : तो वह दृष्टि कृपया रहने दीजिए। देवी प्रियंगुमंजरी बाहर पहुंच गई हैं।

अनुनासिक : देवी बाहर पहुंच गई हैं ? तो चलो अनुस्वार।

अनुस्वार : चलो।

[दोनों साथ-साथ बाहर चले जाते हैं। मातुल भी

उनके पीछे-पीछे चला जाता है और कुछ क्षण बाद प्रियंगुमंजरी को मार्ग दिखलाता हुआ उसके आगे-आगे आता है।]

मातुल : वह सारे प्रदेश में सबसे सुशील, सबसे विनीत और सबसे भोली लड़की है···

[मल्लिका अन्दर के प्रकोष्ठ से आती है।]

आओ, आओ, मल्लिका ! मैं देवी के सामने तुम्हारी ही प्रशंसा कर रहा था। [चाटुकारिता की हँसी हँसता है।] देवी जब से आयी हैं तुम्हारे सम्बन्ध में ही पूछ रही हैं। ···यही है हमारी मल्लिका, इस प्रदेश की राजहंसिनी··· अ···अ···अ···मल्लिका। देवी के लिये कौन-सा आसन नियोजित है ?

[मल्लिका अभिवादन करती है। प्रियंगु मंजरी मुस्करा-कर उसके अभिवादन की स्वीकृति व्यक्त करती है।]

प्रियंगु : आर्य मातुल, आप जाकर विश्राम कीजिए। मेरे अनुचर मेरे लौटने तक बाहर प्रतीक्षा करेंगे।

मातुल : परन्तु आपके लिए आसन···?

प्रियंगु : चिन्ता मत कीजिए। मुझे कोई असुविधा न होगी।

मातुल : असुविधा तो अवश्य होगी। आप असुविधा को असुविधा न समझें यह और बात है। और वास्तव में कुलीनता इसीको कहते हैं। बड़े कुल की यही विशेषता होती है कि···

प्रियंगु : आप जाकर विश्राम कीजिये। मैंने पहले ही आपको बहुत थकाया है।

मातुल : मुझे थकाया है ? आपने ?

[फिर चाटुकारिता की हँसी हँसता है ।]

आपके कारण मैं थकूँगा ? मुझे आप दिन-भर पर्वत-शिखर से खाई में और खाई से पर्वत-शिखर पर जाने को कहती रहें, मैं तब भी नहीं थकूँगा । मातुल का शरीर लोहे का बना है, लोहे का । आत्मश्लाघा नहीं करता, किन्तु हमारे वंश में केवल प्रतिभा ही नहीं, शरीर-शक्ति भी बहुत है । मैं पशुओं के पीछे एक दिन में दस-दस योजन घूमा हूं । मैं कहता हूं, संसार में सबसे कठिन काम है तो वह है, पशु-पाल का । एक पशु भटक जाय···

एक बार देख लजिये ।

प्रियंगु : देखिए, आज भी आपके पशु भटक रहे होंगे, उन्हें जाकर एक बार देख लीजिये ।

मातुल : अब मैं पशुओं को देखता हूं ? गुप्तवंश के साथ सम्बन्ध और पशुओं की देख-रेख ? मैंने तो अपने सब पशु वर्षों पूर्व ही बेच दिये । और सच कहूं तो उसमें भी मुझे लाभ ही रहा, क्योंकि···

[मल्लिका की दृष्टि प्रियंगु से मिली रहती है । प्रियंगु बढ़कर उसके हाथ पकड़ लेती है ।]

प्रियंगु : तुम सचमुच वैसी ही हो जैसी मैंने कल्पना की थी ।

[मल्लिका उसकी निकटता से कुछ अव्यवस्थित हो जाती है ।

मातुल : क्योंकि···अ···अ···अच्छा, तो मुझे अनुमति दीजिये । घर में कई कुछ बिखरा पड़ा है । कई बातों की व्यवस्था

१. चाटुकारिता—खुशामद

करनी शेष है। तो···अनुचर आपकी प्रतीक्षा करेंगे।··· मेरे लिए कोई आदेश हो तो कहला दीजियेगा।··· मल्लिका, देवी के बैठने की व्यवस्था कर दो। नहीं ये तो खड़ी ही रहेंगी। अच्छा, तो मैं चल रहा हूँ। और कोई आदेश हो तो कहला दीजियेगा।

प्रियंगु : आप चलें। यहाँ के लिये कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

मातुल : अच्छा, अच्छा··· [चल देता है।]

मुझे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? चिन्ता करने के लिए यहाँ मल्लिका है, अम्बिका है···। फिर भी कोई बात हो, कहला दीजियेगा···

[चला जाता है। प्रियंगुमंजरी क्षण-भर मल्लिका को देखती रहती है। फिर उसकी ठोड़ी को हाथ से छूती है।]

प्रियंगु : सचमुच बहुत सुन्दर हो। जानती हो, अपरिचित होते हुए भी तुम मुझे अपरिचित नहीं लग रहीं?

मल्लिका : बैठ जाइये।

प्रियंगु : नहीं, बैठना नहीं चाहती। मैं तुम्हें और तुम्हारे घर को देखना चाहती हूँ। उन्होंने बहुत बार तुम्हारी और इस घर की चर्चा की है। जिन दिनों मेघदूत लिख रहे थे, उन दिनों प्राय: यहाँ का स्मरण किया करते थे।

[उसकी दृष्टि चारों ओर घूमकर फिर मल्लिका के मुख पर स्थिर हो जाती है।]

आज इस भूमि का आकर्षण ही हमें यहाँ ले आया है।

अन्यथा दूसरे मार्ग से हम अधिक सुविधापूर्वक काश्मीर की राजधानी में पहुँच सकते थे।

मल्लिका : मैं समझ नहीं पा रही किस रूप में मुझे आपका आतिथ्य करना चाहिये। आप आसन ग्रहण कर लें तो मैं आपके लिये...

प्रियंगु : मेरा आतिथ्य करने की बात मत सोचो। मैं तुम्हारे पास अतिथि के रूप में नहीं आई हूँ।...संभव था ये यहाँ न भी आते परन्तु मैं इन्हें विशेष आग्रह के साथ लाई हूँ। मैं स्वयं एक बार इस प्रदेश को देखना चाहती थी। और इसके अतिरिक्त...

[कण्ठ से हल्का-सा विदग्धतापूर्ण स्वर निकल पड़ता है।]

इसके अतिरिक्त एक और कारण भी था। मैं चाहती थी कि संभव हो तो इस प्रदेश का कुछ वातावरण साथ ले जाऊँ।

[मल्लिका भौंचक-सी देखती रहती है।]

मल्लिका : इस प्रदेश का वातावरण ?

[प्रियंगुमंजरी मुस्कराकर उसे देखती है, फिर टहलती हुई झरोखे के निकट चली जाती है।]

प्रियंगु : यहाँ से बहुत दूर तक की पर्वत-शृंखलाएँ दिखाई देती हैं।...कितनी निर्व्याज सुन्दरता है! मुझे यहाँ आकर तुमसे स्पर्धा होती है।

[मल्लिका दो-एक पग उस ओर को बढ़ती है।]

मल्लिका : यह हमारा सौभाग्य होगा कि आप कुछ दिनों के लिए इस प्रदेश में रह जायें। यहाँ आपको असुविधा

तो होगी, फिर भी…

[प्रियंगुमंजरी पुनः विदग्धतापूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।]

प्रियंगु : इस सौन्दर्य के सम्मुख जीवन की सब सुविधाएं हेय हैं। इसे आँखों में व्याप्त करने के लिए जीवन-भर का समय भी पर्याप्त नहीं। [झरोखे के पास से हट जाती है।] परन्तु इतना अवकाश कहाँ है। काश्मीर की राजनीति इतनी अस्थिर है कि हमारा एक-एक दिन वहाँ से दूर रहना कई-कई समस्याओं को जन्म दे सकता है।…एक प्रदेश का शासन बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। और हम पर तो और ही बड़ा उत्तरदायित्व है। क्योंकि काश्मीर की स्थिति इस समय बहुत संकटपूर्ण है। यों वहाँ के सौन्दर्य की ही इतनी चर्चा है, परन्तु हमें उसे देखने का अवकाश कहाँ रहेगा?

[बाँहें पीछे टिकाकर आसन पर बैठ जाती है।]

इसीलिए तुमसे स्पर्धा होती है कि सौन्दर्य का यह सहज उपभोग हमारे लिये केवल एक स्वप्न है।…बैठ जाओ।

[आसन पर अपने निकट बैठने के लिये संकेत करती है। मल्लिका नीचे बैठने लगती है। प्रियंगु संकेत से उसे रोक देती है।]

यहाँ पास बैठो।

मल्लिका : मैं दूसरा आसन ले लेती हूं।

[कोने से मोढ़ा उठाकर आसन के निकट रख लेती है और उसपर रखे भोजपत्र इत्यादि अपनी गोद में लेकर बैठ जाती है।]

प्रियंगु : लगता है, ग्राम-प्रदेश में रहकर भी तुम्हें साहित्य से अनुराग है। [मल्लिका की आँखें झुक जाती हैं।]
किसकी रचनाएं हैं ये ?

मल्लिका : कालिदास की।

[प्रियंगु की भृकुटियाँ कुछ संकुचित हो जाती हैं।]

प्रियंगु : अब वे मातृगुप्त के नाम से जाने जाते हैं। यहाँ भी उनकी रचनाएं उपलभ्य हैं ?

मल्लिका : ये प्रतियाँ मैंने उज्जयिनी से आनेवाले व्यवसायियों से प्राप्त की हैं।

[प्रियंगुमंजरी के ओठों पर हल्की-सी व्यंग्यात्मक स्मित की रेखा प्रकट होती है।]

प्रियंगु : मैं समझ सकती हूं। मैं उनसे जान चुकी हूं कि तुम शैशव से उनकी संगिनी रही हो। उनकी रचनाओं से तुम्हारा मोह स्वाभाविक है।

[जैसे कुछ सोचती-सी छत की ओर देखने लगती है।]

वे भी जब-तब यहाँ के जीवन की चर्चा करते हुए आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। इसलिए राजनीतिक कार्यों से कई बार उनका मन उखड़ने लगता है।

[सहसा उसकी आँखें मल्लिका के मुख पर स्थिर हो जाती हैं।]

ऐसे अवसरों पर उनके मन को सन्तुलित रखने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक-एक क्षण का महत्त्व है। कभी एक क्षण भी स्खलित हो जाए तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है।

राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने के लिये व्यक्ति को बहुत जागरूक रहना पड़ता है।...साहित्य उनके जीवन का पहला चरण था। अब वे दूसरे चरण पर पहुंच चुके हैं। मेरा समय इसी आयास में व्यतीत होता है कि उनका बढ़ता हुआ चरण पीछे न हट जाय।... परिश्रम-साध्य जीवन है यह !

[मुस्कराने का प्रयत्न करती है]

तुम ऐसा नहीं समझतीं ?

मल्लिका : मैं राजनीतिक जीवन के संबंध में कुछ नहीं जानती।

[प्रियंगु निःश्वास छोड़ती है।]

प्रियंगु : क्योंकि तुम ग्राम-प्रदेश में ही रही हो।

[सहसा उठकर खड़ी हो जाती है। मल्लिका भी उठने लगती है परन्तु वह उसे कन्धे पर से पकड़कर बैठा देती है।]

बैठी रहो।

[दोनों हाथों की उंगलियाँ उलझाये हुए निचले ओठ को थोड़ा चबाती हुई टहलने लगती है।]

मैंने तुमसे कहा था कि मैं यहाँ का कुछ वातावरण साथ ले जाना चाहती हूँ। यह इसलिये कि उन्हें अभाव का अनुभव न हो। कई बार बहुत क्षति होती है। वे व्यर्थ में धैर्य खो देते हैं, जिसमें समय भी जाता है, शक्ति भी। उनके समय का बहुत मूल्य है। मैं चाहती हूं कि उनका समय नष्ट न हुआ करे।

[मल्लिका के सामने रुक जाती है।]

इसलिये मैं यहाँ से कई कुछ अपने साथ ले जा रही हूँ। कुछ हरिणशावक जायेंगे, जिनका हम अपने उद्यान में पालन करेंगे। यहाँ की ओषधियाँ उद्यान में क्रीड़ा-शैल पर तथा आसपास के प्रदेश में लगवा दी जायेंगी। हम यहाँ के-से कुछ घरों का भी निर्माण करेंगे। मातुल और उनका परिवार भी साथ जायगा। यहाँ से कुछ अनाथ बच्चों को वहाँ ले जाकर हम शिक्षा देंगे। मैं समझती हूं इससे अन्तर पड़ेगा।

[फिर टहलती हुई प्रकोष्ठ के दूसरे भाग में चली जाती है।]

देख रही हूं कि तुम्हारा घर बहुत जर्जर स्थिति में है। इसका परिसंस्कार आवश्यक है। तुम चाहो तो मैं इस कार्य के लिये आदेश दे जाऊंगी। उज्जयिनी के दो कुशल स्थपति हमारे साथ आये हैं। क्यों?

[मल्लिका उठकर उसकी ओर आती है।]

मल्लिका : आप बहुत उदार हैं परन्तु हमें ऐसे घर में रहने का ही अभ्यास है, इसलिये हमें असुविधा नहीं होती।

प्रियंगु : फिर भी मैं चाहूंगी कि इस घर का परिसंस्कार हो जाय। उनके जीवन के आरम्भिक वर्षों का इस घर के साथ भी संबंध रहा है। मातुल के घर के स्थान पर मैंने नये भवन के निर्माण का आदेश दिया है। मैंने स्थपतियों से कहा है कि वे उज्जयिनी से श्लक्षण शिलाएं लाकर उस कार्य को आरम्भ करें। मुझे खेद है कि कार्य के निरीक्षण के लिये मैं स्वयं यहाँ न रह सकूँगी। कल ही हमें आगे की

यात्रा आरम्भ कर देनी होगी।···तुम भी हमारे साथ क्यों नहीं चलतीं ?

[मल्लिका विमूढ़ भाव से उसकी ओर देखती है।]

मल्लिका : मैं ?

[प्रियंगु निकट आकर उसके कंधे पर हाथ रख देती है।]

प्रियंगु : हाँ ! इसमें बाधा क्या है ? यहाँ तुम किसी ऐसे सूत्र से तो बंधी नहीं हो कि···

मल्लिका : मेरी माँ यहाँ···

प्रियंगु : यह कोई बाधा नहीं है। तुम्हारी माँ के भी साथ जाने की व्यवस्था हो सकती। हमारे स्थपति इस घर का परिसंस्कार करते रहेंगे। तुम वहाँ मेरे साथ मेरी संगिनी के रूप में रहोगी।

[मल्लिका के मुख पर आहत अभिमान की रेखाएँ व्यक्त होती हैं। परन्तु वह अपने भाव को दबाये रहती है।]

मल्लिका : क्षमा चाहती हूं। मैं अपने को ऐसे गौरव की अधिकारिणी नहीं समझती।

प्रियंगु : परन्तु मैं तुम्हें इससे कहीं अधिक की अधिकारिणी समझती हूं।···मेरे आने से पूर्व राज्य के दो अधिकारी यहाँ आये थे।

[ओठों पर विदग्धतापूर्ण मुस्कान व्यक्त होती है।]

मैंने उन्हें औपचारिक प्रक्रिया के लिये ही नहीं भेजा था। तुमने उन दोनों को देखा है ?

[मल्लिका उसके शब्दों का अर्थ समझने का प्रयत्न करती हुई अनिश्चित-सी उसकी ओर देखती रहती है।]

मल्लिका : देखा है।

प्रियंगु : तुम उनमें से जिस किसी को अपने योग्य समझो उसके साथ तुम्हारे परिणयन का प्रबन्ध किया जा सकता है। दोनों बहुत योग्य अधिकारी हैं।

मल्लिका : देवि !

[भोजपत्रों को वक्ष से सटाए हुए कुछ पग आसन की ओर हट जाती है। प्रियंगुमंजरी उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखती है। फिर धीरे-धीरे उसके निकट चली जाती है।]

प्रियंगु : सम्भवतः तुम उन दोनों में से किसी को भी अपने योग्य नहीं समझतीं। परन्तु राज्य में ये दो ही नहीं और अनेकानेक अधिकारी हैं। तुम मेरे साथ चलो। तुम जिस किसी से चाहोगी…

[मल्लिका सहसा आसन पर बैठ जाती है और रुंधे हुए आवेश के कारण अपना होठ काट लेती है।]

मल्लिका : इस विषय की चर्चा छोड़ दीजिए।

[गला रुंध जाने से शब्द स्पष्ट ध्वनित नहीं होते। अन्दर का द्वार खुलता है और अम्बिका रोग और आवेश के कारण शिथिल और काँपती-सी एक पग बाहर आकर जैसे अपने को सहेजने के लिए रुकती है। प्रियंगु बढ़कर मल्लिका के निकट चली जाती है।]

प्रियंगु : क्यों ? तुम्हारे मन में यह कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर-परिवार हो ?

[अम्बिका धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ने लगती है।]

अम्बिका : नहीं, इसके मन में यह कल्पना नहीं है।

[प्रियंगु सहसा घूमकर उसकी ओर देखती है। मल्लिका ससाध्वस[1] उठ खड़ी होती है।]

मल्लिका : माँ !

अम्बिका : इसके मन में यह कल्पना नहीं है क्योंकि यह भावना के स्तर पर जीती है। इसके लिए जीवन में···

[साँस फूल जाने से शब्द गले में ही अटक जाते हैं। मल्लिका हाथ के पृष्ठ आसन पर छोड़ देती है और उसके निकट आकर उसे पीठ से सहारा देती है।]

मल्लिका : तुम उठ क्यों आयीं माँ ? तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, चलो लेट जाओ।

[उसे अन्दर की ओर ले जाना चाहती है परन्तु अम्बिका उसका हाथ हटा देती है।]

अम्बिका : मैं किसी अभ्यागत से बात भी नहीं कर सकती ? दिन, मास, वर्ष मुझे घुटते हुए बीत जाते हैं। मेरे लिये यह घर अब घर नहीं, एक काल-गह्वर है जिसमें मैं हर समय बंद रहती हूं। और तुम चाहती हो मैं किसी से बात भी न करूं ?

[चलने की चेष्टा में गिरने को हो जाती है। मल्लिका उसे संभाल लेती है।]

मल्लिका : परन्तु माँ, तुम स्वस्थ नहीं हो।

अम्बिका : तुम्हारी अपेक्षा मैं फिर भी स्वस्थ हूं।

[प्रियंगु के निकट जाकर उसे निरीक्षात्मक दृष्टि से देखती है।]

---

१. ससाध्वस---घबराहट के साथ

यह घर सदा से इस अवस्था में नहीं है राजवधू ! जब मेरे हाथ चलते थे, मैं प्रतिदिन लीपती-बुहारती थी। यहाँ की हर वस्तु इस प्रकार गिरी-टूटी नहीं थी। परन्तु आज तो हम दोनों माँ-बेटी यहाँ भी टूटी-सी पड़ी रहती हैं। यह इसलिये कि...

[फिर साँस फूल जाने से आगे नहीं बोल पाती। प्रियंगुमंजरी पुनः प्रकोष्ठ पर दृष्टि डालने के ब्याज से उसकी निकटता से हट जाती है।]

प्रियंगु : मैं देख रही हूँ कि घर की अवस्था अच्छी नहीं है। मल्लिका मेरे साथ चल सकती तो समस्या वैसे ही सुलझ जाती। परन्तु अब...

[अपना ओठ काटती हुई क्षण-भर जैसे सोचने के लिए रुकती है।]

अब भी जो कुछ सम्भव है, मैं अवश्य कर जाऊँगी। मैं स्थपतियों को आदेश दूंगी कि इस घर को गिराकर इसके स्थान पर... [मल्लिका सहसा चिहुँक जाती है।]

मल्लिका : ऐसा मत कीजिए। इस घर को गिराने का आदेश मत दीजिये।

[प्रियंगुमंजरी फिर तीक्ष्ण दृष्टि से उसे देखती है।]

प्रियंगु : मैं तुम्हारी सुविधा के ही लिए कह रही थी। तुम्हें इसमें असुविधा हो तो...ठीक है। मैं ऐसा आदेश नहीं दूंगी। फिर भी चाहती हूँ कि तुम्हारे लिए कुछ-न-कुछ अवश्य कर सकूँ...। इस समय और नहीं रुक सकती...। कल की यात्रा से पूर्व कई और आवश्यक कार्य सम्पन्न

करने हैं। यों तो इस समय भी अवकाश नहीं था। फिर भी मैंने आना आवश्यक समझा। वे पर्वत-शिखर की ओर घूमने चले गये थे। मैं उस बीच इधर चली आयी। अच्छा ··

[मल्लिका के हाथों की उंगलियाँ उलझ जाती हैं और आँखें झुक जाती हैं। अम्बिका उसी आवेश में दो-एक पग प्रियंगु की ओर बढ़ती है।]

अम्बिका : परन्तु राजवधू, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती थी। तुम्हें बताना चाहती थी कि···
हम लोग···लोग···

[खाँसने लगती है और शब्द खाँसी में डूब जाते हैं। प्रियंगुमंजरी द्वार के पास से मुड़ती है।]

प्रियंगु : मैं आपके कष्ट को समझ रही हूँ। जो भी सहायता मुझसे बन पड़ेगी, अवश्य करूँगी। इस समय अनुचर प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये···

[गम्भीर गरिमापूर्ण स्मित के साथ मल्लिका की ओर देखकर धीरे-धीरे चली जाती है। अम्बिका आवेश से निःशक्त-सी उस ओर देखती रहती है।]
फिर वह गिरती-सी आसन पर बैठ जाती है और वहाँ से कुछ पन्ने उठाकर मल्लिका की ओर बढ़ा देती है।]

अम्बिका : लो, मेघदूत की पंक्तियाँ पढ़ो। इन्हीं में न कहती थीं कि उसके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है···? आज उस कोमलता का और भी साकार रूप देख लिया ?

[मल्लिका ठगी-सी उसकी ओर देखती रहती है।]

आज वह तुम्हें तुम्हारी भावना का मूल्य देना चाहता है। क्यों नहीं स्वीकार कर लेतीं? घर की भित्तियों का परिसंस्कार हो जायगा और तुम उनके यहाँ परिचारिका बनकर रह सकोगी। इससे बड़ा और क्या सौभाग्य चाहिए।

मल्लिका : राजकन्या की अपनी जीवन-दृष्टि है माँ? उसके लिये और कोई क्योंकर उत्तरदायी है?

अम्बिका : किन्तु उसके यहाँ आने के लिये कौन उत्तरदायी है? निःसन्देह वह उस किसी की इच्छा के बिना यहाँ नहीं आयी···। राज्य के स्थपति इस घर की भित्तियों का परिसंस्कार कर देंगे! आज वह प्रभु है, उसके पास सम्पदा है। उस प्रभुता और सम्पदा का परिचय देने के लिये इससे अच्छा और क्या उपाय हो सकता था?

मल्लिका : परन्तु माँ···

अम्बिका : माँ कुछ नहीं जानती। कुछ नहीं समझती। माँ भावना की गहराई तक नहीं जाती। माँ···

[फिर खाँसी उठ आने से आगे नहीं बोल पाती। विलोम बाहर से आता है। [

विलोम : इस प्रकार क्षुब्ध क्यों हो अम्बिका···? आज तो सारा ग्राम तुम्हारे सौभाग्य पर तुमसे स्पर्धा कर रहा है।

[अर्थपूर्ण दृष्टि से मल्लिका की ओर देखता है। मल्लिका आँखें बचाकर दूसरी ओर हट जाती है।]

राजकीय पगधूलि घर में पड़ती है तो लोग गौरव का

अनुभव करते हैं। ऐसा अवसर हर किसी के जीवन में कहाँ आता है!

अम्बिका : यह अवसर देखने के लिए ही तो मैंने आज तक का जीवन जिया है...। इतना बड़ा सौभाग्य हमारे क्षुद्र जीवन में कहाँ समा सकता है?

[सहसा उठ खड़ी होती है।]

चलो, मैं स्वयं चलकर ग्राम-भर में इस सौभाग्य की घोषणा करूँगी। हमारे वर्षों के अभाव और दुःख कितना बड़ा फल लाए हैं कि राज्य के स्थपति हमारे घर की भित्तियों का परिसंस्कार कर देंगे।

विलोम : बैठ जाओ अम्बिका। आज ग्राम के पास तुम्हारी बात सुनने का अवकाश नहीं है।

[टहलता हुआ झरोखे के निकट चला जाता है।]

ग्राम के लोग आज व्यस्त हैं। उन्हें बाहर से आये अतिथियों के लिए कई तरह की सामग्री जुटानी है। अतिथि यहाँ के पत्थर तक बटोरकर ले जाना चाहते हैं। यहाँ के पत्थर अब बहुत मूल्यवान समझे जाते हैं।

[फिर साभिप्राय दृष्टि से मल्लिका की ओर देखता है।]

मल्लिका : यहाँ के पत्थर पहले भी मूल्यवान थे आर्य विलोम! यह और बात है कि पहले किसीने उनका मूल्य समझा न हो।

[अम्बिका आवेश में कई पग उसके निकट चली जाती है।]

अम्बिका : तो जाकर तुम भी क्यों नहीं बटोर लेतीं? सम्भव

है फिर लोग यहाँ कोई पत्थर शेष न रहने दें और तुम्हारी भावना के लिए कोई आधार न रहे !

मल्लिका : बैठ जाओ माँ, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

[उसे बाँह से पकड़कर आसन पर बैठा देती है।]

विलोम : ग्राम में चारों ओर बहुत उत्साह है। यह दिन इस प्रदेश के जीवन का सबसे बड़ा उत्सव है। लोग आज अपने पशुओं की चिन्ता नहीं कर रहे। वे अतिथियों के लिए भोज्य और पेय सामग्री जुटाने में व्यस्त हैं। उस भोज्य सामग्री में सम्भवतः कुछ हरिणशावक भी होंगे जो राजकन्या के विशेष आदेश पर उपलब्ध किये जा रहे हैं।

मल्लिका : यह सत्य नहीं है।

विलोम : सत्य नहीं है ? परन्तु इन्द्रवर्मा और विष्णुदत्त को स्वयं राजकन्या ने आदेश दिया है कि···

मल्लिका : उस आदेश का और अर्थ भी हो सकता है।

विलोम : और अर्थ ? क्या और अर्थ है ? राजकन्या हरिणशावकों से खेला करेंगी ? या उज्जयिनी के कलाकार उनकी अनुकृतियाँ बनायेंगे···? यह भी एक हृदयग्राही विषय है कि राजपरिवार के साथ आये हुए राजधानी के कलाकार आज यहाँ हर वस्तु की अनुकृतियाँ बनाते घूम रहे हैं। यहाँ का कोई पेड़, कोई पत्ता, कोई तिनका शेष न रहेगा जिसकी वे अनुकृति बनाकर न ले जायेंगे।

मल्लिका : इसका भी कुछ अपना अर्थ हो सकता है।

[विलोम झरोखे के पास से हटकर उसकी ओर आता है।]

विलोम : मैं कब कहता हूँ कि इसका अर्थ नहीं है ? अर्थ बहुत

स्पष्ट है। वे यहाँ की हर वस्तु को विचित्र के रूप में देखते हैं और उस वैचित्र्य को यहाँ से जाकर दूसरों को दिखाना चाहते हैं। तुम, मैं, यह घर, ये पर्वत, सब उनके लिए विचित्रता के उदाहरण हैं; मैं तो उनकी सूक्ष्म और समर्थ दृष्टि की प्रशंसा करता हूँ जो जहाँ वैचित्र्य नहीं, वहाँ भी वैचित्र्य देख लेती है। एक कलाकार को मैंने यहाँ की धूप में अपनी ही छाया की अनुकृति बनाते देखा है।

अम्बिका : यहाँ की धूप में उन्हें अपनी छायाएँ अवश्य और-सी लगती होंगी।...वह कौन-सी राक्षसी थी जो जिस किसी जीव की छाया को पकड़ लेती थी ?

[बोलते-बोलते फिर हाँफने लगती है।]

बहुत चाहती हूँ मैं भी वह राक्षसी होती और आज मैं भी...मैं भी...

[खाँसी उठ आने से शब्द डूब जाते हैं। मल्लिका पास जाकर उसे कन्धों से पकड़ लेती है।]

मल्लिका : तुमसे मैंने कहा है माँ, तुम विश्राम कर लो। बातें मत करो।...आर्य विलोम, माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इन्हें इस समय विश्राम करने दीजिये।

विलोम : हाँ, अम्बिका को अन्दर ले जाओ। यहाँ पर ग्राम का उत्सव-कोलाहल अम्बिका के मन को अशान्त करेगा। मैं तो उत्सव की सूचना-मात्र देने के लिए आया था।...आश्चर्य है कि कालिदास ने स्वयं यहाँ आना उचित नहीं समझा। कल तो सुनते हैं वे लोग चले भी जायेंगे।

अम्बिका : उसने आना उचित नहीं समझा क्योंकि वह जानता है कि अम्बिका अभी जीवित है।

विलोम : परन्तु मैं समझता हूँ कि वह एक बार आयेगा अवश्य। उसे आना चाहिए। व्यक्ति किसी सम्बन्ध-सूत्र को ऐसे नहीं तोड़ता।

[फिर टहलता हुआ झरोखे के निकट चला जाता है।]

और विशेष रूप से वह, जिसे एक कवि का भावुक हृदय प्राप्त हो। तुम क्या सोचती हो मल्लिका? उसे एक बार आना नहीं चाहिए?

मल्लिका : मैंने आपसे अनुरोध किया है आर्य विलोम, कि इस समय माँ को विश्राम करने दीजिये। आपकी बातों से माँ का मन अस्थिर होता है।

विलोम : मेरी बातों से अम्बिका का मन अस्थिर होता है? मैं समझता हूँ कि वे कारण दूसरे है, अम्बिका जानती है कि उसका मन किन कारणों से अस्थिर होता है।

[झरोखे में बाहर देखने लगता है।]

मैं भी उन कारणों को समझता हूँ। इसलिए बहुत-सी बातें, जो अम्बिका के मन में दबी रहती हैं, मैं मुखर होकर कह देता हूँ।

[मुड़कर मल्लिका की ओर देखता है।]

तुम्हें मेरी उपस्थिति अखर रही है, यह मैं जानता हूँ। यह नयी बात नहीं है।...परन्तु मैं कुछ ही देर और यहाँ रुकना चाहता हूँ। [फिर बाहर देखने लगता है।]

पर्वत-शिखर की ओर से एक अश्वारोही को आते देख

रहा हूँ, सम्भव है वह इस बार कुछ क्षणों के लिए यहाँ रुकना चाहे ! उस स्थिति में मैं भी उससे कुशल-क्षेम पूछ लूँगा। मेरी उससे बहुत पुरानी मित्रता है।

[मल्लिका जैसे अनात्मवश-सी हो जाती है।]

मल्लिका : आर्य विलोम, उस स्थिति में आपका यहाँ होना किसी भी दृष्टि से हितकर न होगा। आप उनसे मिलना चाहें तो उसके लिए यही एक स्थान नहीं है।

[विलोम उसी प्रकार बाहर देखता रहता है।]

विलोम : परन्तु यह स्थान ही क्या बुरा है ! उसके जाने से पूर्व भी हम इसी स्थान पर मिले थे। वर्षों के अनन्तर उसी स्थान पर मिलने से अन्तराल का अनुभव नहीं होगा।

[मल्लिका सहसा विलोम के निकट चली जाती है और उसे बाँह से पकड़कर झरोखे से हटाना चाहती है।]

मल्लिका : मैं अनुरोध करती हूं कि आप इस समय यहाँ ठहरने का हठ न करें।

[उसे बाँह से खींचना चाहती है, पर विलोम अपने स्थान से नहीं हिलता। दूर से घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई देने लगता है।]

...मैं कह रही कि हूँ आप चले जाइए। यह मेरा घर है। मैं नहीं चाहती कि आप इस समय मेरे घर में हों।

[विलोम अपने स्थान से नहीं हटता। टापों का शब्द निकट आता जाता है। मल्लिका उसके पास से हटकर अम्बिका के पास आ जाती है और उसके कन्धों को पकड़ लेती है।]

माँ, इनसे कहो ये यहाँ से चले जाएं। मैं नहीं चाहती कि इस समय यहाँ कोई अयाचित स्थिति उत्पन्न हो। तुम स्वस्थ नहीं हो और मैं नहीं चाहती कि कोई ऐसी बात हो जिसका तुम्हारे स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़े।

[अम्बिका उसके हिलाने से इस प्रकार हिलती है जैसे वह चेतन न होकर जड़ हो। उसके माथे पर बल पड़े रहते हैं और आँखें अपलक सामने की ओर देखती रहती हैं। घोड़ों की टापों का शब्द बहुत पास आ जाता है। मल्लिका अम्बिका के पास से हटकर विलोम के निकट चली जाती है।]

मल्लिका : आर्य विलोम, मैंने आपसे कहा कि आप यहाँ से चले जाएं। आप···

[सहसा घोड़ों की टापों का शब्द बहुत पास आकर दूर चला जाता है। मल्लिका ऐसे हो जाती है जैसे उसकी वाणी खो गई हो। विलोम धीरे से झरोखे के पास से मुड़ता है।]

विलोम : चला जाता हूं।

[कंठ से हल्का व्यंग्यात्मक हंसी का स्वर निकलता है।]

नहीं चाहता कि मेरे कारण यहाँ कोई अयाचित स्थिति उत्पन्न हो, परन्तु क्या अयाचित स्थिति उत्पन्न हो सकती है, यह जान सकता हूं ?

[झरोखे से हटकर प्रकोष्ठ के मध्य भाग में आ जाता है।]

क्यों अम्बिका, मेरे यहाँ रहने से क्या अयाचित स्थिति उत्पन्न हो सकती है ? [अम्बिका ओठ काटती रहती है।]

अम्बिका : मैं जानती थी। आज नहीं, तब से ही जानती थी। यह आता तो मुझे आश्चर्य होता। अब मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। [स्वर ऊँचा उठ जाता है।]

मल्लिका !

[जैसे उसकी शक्ति क्षीण हो रही हो, धीरे-धीरे आसन पर बैठ जाती है।]

मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। मुझे प्रसन्नता है कि मैं उसके सम्बन्ध में ठीक सोचती थी। जीवन एक भावना है; कोमल भावना…बहुत-बहुत कोमल भावना !

[उन्मादी-सी हँसी हँसती है जिसके साथ ही खाँसी उठ आती है।]

विलोम : किन्तु मुझे खेद है। वर्षों से इस दिन की प्रतीक्षा थी। अपनी मित्रता पर भरोसा भी था…

[साभिप्राय दृष्टि से मल्लिका की ओर देखता है।]

परन्तु अब भरोसा नहीं रहा। संभवतः यह मित्रता एक ओर से ही थी। उसने कभी हमें अपनी मित्रता के योग्य नहीं समझा।…और फिर समान की समान से मित्रता होती है…

[मल्लिका सहसा उठ खड़ी होती है। उसकी आँखों से हताशा की कठोरता व्यक्त होती है।]

मल्लिका : आर्य विलोम !

[विलोम ऐसी दृष्टि से उसे देखता है, जैसे किसी बच्चे से खेल रहा हो।]

मैं फिर कह रही हूँ, आप चले जाएँ। अन्यथा वास्तव में यहाँ एक अयाचित स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

विलोम : ऐसा ? [कन्धे झटकता है।]

तब तो मुझे अवश्य चले जाना चाहिए।...अच्छा अम्बिका ! तुम्हारे स्वास्थ्य की मुझे बड़ी चिन्ता रहती है। जहाँ तक सम्भव हो, घृत और मधु का सेवन करो। मैंने अभी-अभी नया मधु निकाला है। चाहो तो मैं तुम्हारे लिए...

[मल्लिका का स्वर और तीखा हो जाता है।]

मल्लिका : हमें मधु की आवश्यकता नहीं है। हमारे घर में मधु पर्याप्त मात्रा में है।

विलोम : ऐसा ?...अच्छा अम्बिका !

[क्षण-भर कुछ सोचता-सा खड़ा रहता है, फिर कन्धे हिलाकर चल देता है। द्वार के पास से फिर मुड़ पड़ता है।]

...कभी मधु की आवश्यकता पड़ ही जाए तो संकोच नहीं करना।

[ओठ सिकोड़कर दोनों को देखता है; फिर चला जाता है। मल्लिका क्षण-भर सिर झुकाए भार से दबी-सी खड़ी रहती है। फिर अपने को झटककर अन्दर की ओर चल देती है। अम्बिका की मुख-मुद्रा आवेश से हताशा और हताशा से आर्द्रता में बदलती है। उसकी दृष्टि मल्लिका पर स्थिर रहती है।]

अम्बिका : मल्लिका !

[मल्लिका व्यथापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखती है।]

मल्लिका : माँ !

[अम्बिका उठकर धीरे-धीरे उसके निकट चली जाती हैं और उसे बाँहों में भर लेती है। मल्लिका उसके वक्ष में मुंह छिपा लेती है। उसका सारा शरीर उद्वेग से काँपता है, परन्तु कण्ठ से रुलाई का शब्द सुनाई नहीं देता। अम्बिका की आँखें मुंद जाती हैं और वह उसके काँपते हुए शरीर पर हाथ फेरती रहती है। फिर वह अपने ओठों और गालों से उसके सिर को दुलारने लगती है।]

अम्बिका : अब भी रोती हो ? उसके लिए ? उस व्यक्ति के लिए जिसने…

मल्लिका : उसके सम्बन्ध में कुछ मत कहो माँ, कुछ मत कहो…

[सिसकती रहती है।]

अंक ३

कुछ और वर्षों के अनन्तर

[पर्दा उठने से पहले वर्षा और मेघ-गर्जन का शब्द । पर्दा उठने पर वही प्रकोष्ठ। एक टिमटिमाता दीपक जल रहा है। प्रकोष्ठ की स्थिति में पहले से बहुत परिवर्तन लक्षित होता है । हर वस्तु जर्जर और अस्तव्यस्त है। कुम्भ केवल एक है और उसका भी कोना टूटा हुआ है। आसन अपने स्थान से हटा हुआ है और उसपर अब बाघ-छाल नहीं है। दीवारों पर से स्वस्तिक आदि के चिह्न लगभग बुझ चुके हैं। चूल्हे के पास केवल दो-एक बरतन हैं, जिनपर स्याही चढ़ी हुई है। एक कोने में फटे हुए मैले वस्त्र जमा हैं। चारों ओर विचित्र अराजकता व्याप्त प्रतीत होती है। प्रकोष्ठ में कोई नहीं है। मातुल भीगे वस्त्रों में बैसाखी के सहारे चलता हुआ आता है। चारों ओर दृष्टि डालकर वह एक लम्बी साँस लेता है, नकारात्मक भाव से सिर हिलाता है और प्रकोष्ठ के मध्यभाग में आ जाता है।]

मातुल : मल्लिका !

[अन्दर से मल्लिका का स्वर सुनाई देता है।]

मल्लिका : कौन है ?

मातुल : मैं हूँ मातुल । देखो, वर्षा ने मातुल की क्या गति की है !

[अपने सिर से और वस्त्रों से पानी निचोड़ने लगता है। मल्लिका अन्दर का द्वार खोलकर आती है। उसके वस्त्र फटे हुए हैं, रंग पहले से काला पड़ गया है और आँखों का भाव भी विचित्र-सा लगता है। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में भी प्रकोष्ठ की-सी ही जीर्णता व्याप्त प्रतीत होती है। किवाड़ खुलने पर अन्दर का जो भाग दिखाई देता है, वहाँ अब तल्प के स्थान पर एक टूटा-सा पालना रखा है। मल्लिका बाहर आकर किवाड़ बन्द कर देती है।]

मल्लिका : आर्य मातुल, आप इस वर्षा में ?

मातुल : इस वर्षा से बचने के लिए तुम्हारे घर के सिवा कोई शरण नहीं थी। सोचा, जो हो, मातुल के लिए आज भी तुम वही मल्लिका हो।...यह आषाढ की वर्षा तो मेरे लिए काल हो रही है। पहले जब दो पैरों पर चल लेता था तो मैंने कभी भारी से भारी वर्षा की चिन्ता नहीं की। परन्तु अब यह स्थिति है कि बैसाखी आगे को रखता हूँ तो पैर पीछे फिसल जाता है और पैर आगे को रखता हूँ तो बैसाखी पीछे को फिसल जाती है। यह जानता कि राज-प्रासाद में रहकर पाँव तोड़ बैठूँगा तो कभी ग्राम छोड़-कर न जाता। अब पीछे से मेरा घर भी उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि कहीं मेरा पैर जमता ही नहीं। इन चिकने शिला-खण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी थी जो पैर को पकड़ती तो थी। मैं तो इस घर के रहते हुए भी गृहहीन हो रहा हूँ। न बाहर रहते बनता है न अन्दर रहते। इन श्वेत शिला-खण्डों के दर्शन से ही

मुझे वह प्रासाद स्मरण हो आता है जहाँ फिसलकर एक पैर तोड़ आया हूँ।

मल्लिका : खड़े रहने में आपको कष्ट होगा। आसन ले लीजिए।

[मातुल आसन के निकट जाकर बैसाखी रख देता है और जमकर बैठ जाता है।]

मातुल : मुझसे कोई पूछे तो मैं कहूँगा कि राजप्रासाद में रहने से अधिक कष्टकर स्थिति संसार में हो ही नहीं सकती। आप आगे देखते हैं तो प्रतिहारी जा रहे हैं। पीछे देखते हैं तो प्रतिहारी आ रहे हैं। सच कहता हूँ मल्लिका, मुझे कभी पता नहीं चल पाया कि प्रतिहारी मेरे पीछे चल रहे हैं या मैं प्रतिहारियों के पीछे चल रहा हूं।...और इससे भी कष्टकर स्थिति यह थी कि जिन व्यक्तियों को देखकर मेरा आदर से सिर झुकाने को मन होता था, वे मेरे सामने सिर झुका देते थे। मेरे सामने... [हाथ से अपनी ओर संकेत करता है।]
बताओ, मातुल में ऐसा क्या है जिसके आगे कोई सिर झुकाएगा ! मातुल न देवी है न देवता, न पण्डित है न राजा है। क्यों कोई सिर झुकाकर मातुल की वन्दना करे ? परन्तु नहीं। लोग मातुल की क्या मातुल के शरीर से उतरे हुए वस्त्रों तक की वन्दना करने को प्रस्तुत थे, और मैं बार-बार अपने को छूकर देखता था कि मेरा शरीर हाड़-माँस का ही है या चिकने पत्थर का हो गया है जैसे मन्दिरों में देवी-देवताओं का होता है।...

यहाँ आकर मुझे सबसे बड़ा सुख यही है कि कोई झुककर मेरी वन्दना नहीं करता और न मुझे भ्रम होता है कि मैं आगे चल रहा हूँ कि प्रतिहारी आगे चल रहे हैं। केवल यह वर्षा मुझसे नहीं सही जाती।

मल्लिका : आपको वस्त्र सुखाने के लिए आग जला दूँ !

[मातुल चूल्हे की ओर देखता है और फिर चारों ओर दृष्टि डालता है।]

मातुल : तुमने घर की क्या अवस्था कर रखी है ?

[पुनः नकारात्मक भाव से सिर हिलाता है।]

अम्बिका के न रहने से घर में कोई व्यवस्था न रही। जिधर देखता हूं अराजकता दिखाई देती है। यह ठीक है कि प्रियंगुमंजरी ने तुम्हारे लिए कुछ वस्त्र और स्वर्ण-मुद्राएं भिजवायी थीं तो तुमने लौटा दीं।

मल्लिका : मुझे उनकी आवश्यकता नहीं थी।

[मैले वस्त्रों के पास जाकर उनके नीचे से भोजपत्रों से बनाए हुए ग्रन्थ को निकाल लेती है और उसकी धूल झाड़ने लगती है।]

मातुल : और तुम्हारे घर के परिसंस्कार के लिए उसने स्थ-पतियों से कहा था...।

मल्लिका : मैंने किसी परिसंस्कार की आवश्यकता नहीं समझी।

[ग्रन्थ को रखने के लिए इधर-उधर स्थान देखती है। फिर उसे मातुल के निकट आसन पर रख देती है।]

आपके लिए आग जला दूँ ?

मातुल : नहीं वर्षा थम रही है।

[उठकर बैसाखी लिए हुए झरोखे के पास चला जाता है।]

बहुत हल्की-हल्की बूँदें हैं। किसी तरह घिसटता हुआ घर तक पहुँच जाऊँ, वहीं जाकर वस्त्रों को सुखाऊँगा। कहीं फिर धारासार बरसने लगा तो बस···

[झरोखे से हटकर मल्लिका के निकट आ जाता है।]

तुमने काश्मीर का कुछ समाचार सुना है?

[मल्लिका गम्भीर और स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखती है।]

मल्लिका : मैं घर में रहती हूँ। कहीं के समाचार कैसे सुन सकती हूँ?

मातुल : मैंने सुना है। विश्वास तो नहीं होता किन्तु होता भी है। राजनीति में कुछ भी असम्भव नहीं है। जितना संभव है कि ऐसा न हो, उतना ही सम्भव है कि ऐसा हो। और यह भी सम्भव है कि जो हो वह न हो···

[मल्लिका अप्रतिभ-सी उसकी ओर देखती रहती है।]

मल्लिका : परन्तु समाचार क्या है?

मातुल : समाचार यह है कि सम्राट का निधन हो गया है। काश्मीर में विद्रोही शक्तियाँ सिर उठा रही हैं। वहीं से आये एक आहत सैनिक का कहना है कि···कि कालिदास ने काश्मीर छोड़ दिया!

मल्लिका : उन्होंने काश्मीर छोड़ दिया है?

[वैसे ही अप्रतिभ और सोचती-सी आसन पर बैठ जाती है।]

और अब वे पुनः उज्जयिनी चले गये ?

मातुल : नहीं। उज्जयिनी नहीं गया। वहाँ के लोगों का तो विश्वास है कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता। उसका राजधानी में इतना मान है। यदि काश्मीर में रहना सम्भव नहीं था, उसे सीधे राजधानी में चले आना चाहिए था। परन्तु असम्भव भी नहीं है। एक राजनीतिक जीवन, दूसरे कालिदास। मैं आज तक इन दोनों में से किसी एक की धुरी को नहीं पहचान सका। मैं तो समझता हूँ कि जो कुछ मैं समझ पाता हूँ, सत्य सदा उसके विपरीत होता है। और मैं जब उस विपरीत तक पहुंचने लगता हूँ तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है। अतः मैं जो कुछ समझ पाता हूँ वह सदा मिथ्या होता है। इससे अब तुम निष्कर्ष निकाल लो कि क्या सत्य हो सकता है कि उसने संन्यास ले लिया है या नहीं लिया। मैं तो यही समझता हूँ कि उसने संन्यास नहीं लिया, इसलिए सत्य यही होना चाहिए कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है।

[मल्लिका आसन से ग्रन्थ को उठाकर वक्ष से लगा लेती है।]

मल्लिका : नहीं, यह सत्य नहीं हो सकता। मेरा हृदय इसे स्वीकार नहीं करता।

[मातुल बैसाखी से भूमि पर प्रहार करता है।]

मातुल : मैंने तुमसे क्या कहा था ? कि मैं जो कहूँगा वह

कभी सत्य नहीं हो सकता ! इसलिए मैं कुछ नहीं कहता। वह काशी गया है तो भी झूठा हूँ। नहीं गया तो भी झूठा हूँ।...यह तो ठीक है ?

[बैसाखी पटकता हुआ चला जाता है। मल्लिका अपने में गुम-सी आसन पर बैठी रहती है और पुनः ग्रन्थ को देखती है।]

मल्लिका : नहीं, तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था।...मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन-भार सँभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभकामनाएँ दीं, यद्यपि प्रत्यक्षतः तुमने वे शुभ-कामनाएं ग्रहण नहीं कीं।

[ग्रन्थ को हाथों में लिए हुए दोनों बाहें सीधी कर लेती है और अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।]

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा वर्तमान रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने पास से हटने नहीं दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है। [ग्रन्थ को घुटनों पर रख लेती है।]

और आज तुम मेरे जीवन को इस प्रकार सर्वथा निरर्थक कर दोगे ?

[ग्रन्थ को आसन पर रखकर उद्विग्न भाव से उसकी ओर देखती है।]

तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब

तटस्थ नहीं हो सकती। तुम जीवन को मेरी दृष्टि से क्यों नहीं देखते ?

[ग्रंथ को आसन पर छोड़कर झरोखे के पास चली जाती है और बाँहें पीछे किये हुए झरोखे से टेक लगाकर उसकी ओर देखती है।]

जानते हो, मेरे जीवन के ये वर्ष कैसे व्यतीत हुए हैं ? मैंने क्या-क्या देखा है ? क्या से क्या हुई हूँ ?

[तीव्रगति से अन्दर के द्वार के पास जाकर किवाड़ खोल देती है और पालने की ओर संकेत करती है।]

इस जीव को देखते हो ! पहचान सकते हो ! यह मल्लिका है जो धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं इसकी सेवा-शुश्रूषा करती हूँ।...यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह कोई नहीं हो सका और अभाव के कोष्ठ में न जाने कौन-कौन आकृतियाँ हैं ! जानते हो, मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं नाम नहीं केवल विशेषण हूँ।

[किवाड़ बन्द करके आसन की ओर लौट पड़ती है।]

व्यवसायी कहते थे, उज्जयिनी में यह अपवाद है कि तुम्हारा बहुत-सा समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होता है।...परन्तु तुमने वारांगना का यह रूप भी देखा है ! आज तुम मुझे पहचान सकते हो ? मैं आज भी उसी प्रकार पर्वत-शिखर पर जाकर मेघ-मालाओं को देखती हूं, उसी प्रकार ऋतुसंहार और मेघ-

दूत की पंक्तियाँ पढ़ती हूँ। मैंने अपने भाव के कोष्ठ को रिक्त नहीं होने दिया। परन्तु मेरे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हो?

[आसन पर कुहनियाँ रखकर बैठ जाती है और ग्रंथ को हाथों में उठा लेती है।]

नहीं, तुम अनुमान नहीं लगा सकते। तुमने लिखा था कि एक दोष गुणों के समूह में उसी प्रकार छिप जाता है जैसे इन्दु की किरणों में कलंक; परन्तु दारिद्रय नहीं छिपता; सौ-सौ गुणों में भी नहीं छिपता। नहीं, छिपता ही नहीं, सौ-सौ गुणों को छा लेता है—एक-एक करके नष्ट कर देता है।

[ओठ चबाती हुई और अन्तर्मुख हो जाती है।]

परन्तु मैंने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी। और आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोड़कर संन्यास ले रहे हो? तटस्थ हो रहे हो? उदासीन···? मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस प्रकार वंचित कर दोगे?

[बिजली कौंधती है और मेघ-गर्जन सुनाई देता है।]

वही आषाढ का दिन है। उसी प्रकार मेघ गरज रहे हैं। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूं। उसी घर में हूं। परन्तु फिर भी···!

[पुनः बिजली कौंधती है, मेघ-गर्जन सुनाई देता है और ड्योढ़ी का द्वार धीरे-धीरे खुलता है। कालिदास

राजकीय वस्त्रों में परन्तु क्षत-विक्षत-सा द्वार खोलकर ड्योढ़ी में ही खड़ा रहता है। मल्लिका किवाड़ खुलने के शब्द से ससंभ्रम उधर देखती है और सहसा उठ खड़ी होती है। कालिदास एक पग अन्दर रखता है। मल्लिका जड़वत् उसे देखती है।]

कालिदास : सम्भवतः पहचानती नहीं हो।

[मल्लिका उसी प्रकार देखती रहती है। कालिदास अन्दर आकर प्रकोष्ठ में इधर-उधर देखता है, फिर मल्लिका पर सिर से पैर तक एक दृष्टि डालता है और आसन की ओर चला जाता है।]

और न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ।

[बाँहें पीछे टिकाकर आसन पर बैठ जाता है।]

और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं भी नहीं पहचानता !...तुम इस प्रकार जड़वत् क्यों खड़ी हो ? मुझे देखकर बहुत आश्चर्य हुआ ?

[मल्लिका जाकर किवाड़ बन्द कर देती है फिर खोई-सी दो-एक पग उसकी ओर बढ़ती है।]

मल्लिका : आश्चर्य ?...मुझे यह विश्वास ही नहीं होता कि तुम तुम हो, और मैं जो तुम्हें देख रही हूँ, वास्तव में मैं ही हूँ...!

कालिदास : देख रहा हूँ कि तुम भी वह नहीं हो। सब कुछ परिवर्तित हो गया है। या संभव है कि परिवर्तन केवल

मेरी दृष्टि में ही हुआ है।

मल्लिका : क्या करूँ ? मुझे विश्वास नहीं होता कि यह स्वप्न नहीं है।

कालिदास : नहीं, स्वप्न नहीं है। यह यथार्थ है कि मैं यहाँ हूँ, दिनों की यात्रा करके थका, टूटा-हारा हुआ यहाँ आया हूँ कि एक बार यहाँ के यथार्थ को देख लूँ।

मल्लिका : तुम बहुत भीग गए हो। मेरे यहाँ सूखे वस्त्र तो न होंगे, पर मैं···

कालिदास : मेरे भीगने की चिन्ता न करो।···जानती हो, इस तरह भीगना भी जीवन की एक महत्त्वाकांक्षा हो सकती है! बहुत वर्षों के बाद भीगा हूँ। अभी सूखना नहीं चाहता। चलते-चलते बहुत थक गया था। कई दिन ज्वराक्रांत रहा। परन्तु इस वर्षा से जैसे थकान मिट गयी है···

[मल्लिका दो-एक पग और उसके निकट चली जाती है।]

मल्लिका : बहुत थक गए हो !

कालिदास : बहुत थक गया था। अब भी थका हूँ परन्तु वर्षा ने थकान कम कर दी है।

मल्लिका : तुम वस्तुतः पहचाने नहीं जाते।

[कालिदास कई क्षण उसे देखता रहता है। फिर हल्की-सी अवसादपूर्ण हँसी के साथ उठकर झरोखे की ओर चला जाता है।]

कालिदास : और तुम्हीं कहाँ पहचानी जाती हो ! यह घर भी कितना बदल गया है ! और मैं आशा कर रहा था

कि सबका सब वैसा ही होगा, ज्यों का त्यों, स्थान...। कुछ भी तो यथास्थान नहीं।

[घूमकर चारों ओर देखता है।]

तुमने सब कुछ बदल दिया है।

[उसी प्रकार देखता हुआ प्रकोष्ठ के दूसरे अन्त तक जाकर लौटता है।]

सभी कुछ बदल दिया है।

मल्लिका : मैंने नहीं बदला।

[कालिदास जैसे जागकर उसकी ओर देखता है और टहलने लगता है।]

कालिदास : जानता हूँ कि तुमने नहीं बदला। परन्तु मल्लिका! ...

[उसके निकट आ जाता है।]

मैंने यह नहीं सोचा था कि यह घर कभी मुझे अपरिचित भी लग सकता है। यहां की प्रत्येक वस्तु का स्थान और विन्यास इतना निश्चित था परन्तु आज सब अपरिचित लग रहा है। और...

[उसकी आँखों में देखता है।]

और तुम भी। तुम भी अपरिचित लग रही हो। इसीलिए कहता हूँ कि संभव है दृश्य उतना नहीं बदला जितनी मेरी दृष्टि बदल गई है।

मल्लिका : थके हुए हो, बैठ जाओ। तुम्हारी आँखों से लगता है तुम स्वस्थ नहीं हो।

कालिदास : बहुत दिन इधर-उधर घूमने के अनन्तर यहाँ आया

हूँ। काश्मीर जाते हुए जिस कारण से नहीं आया, आज उसी कारण से आया हूँ।

[क्षण-भर दोनों एक-दूसरे की आँखों में देखते रहते हैं।]

मल्लिका : आर्य मातुल ने आज ही बताया था कि तुमने काश्मीर छोड़ दिया है।

कालिदास : हाँ, क्योंकि सत्ता और प्रभुता का मोह छूट गया है। आज मैं उस सबसे मुक्त हूँ जो वर्षों से मुझे कसकता रहा है। काश्मीर में लोग समझते हैं कि मैंने संन्यास ले लिया। परन्तु मैंने संन्यास नहीं लिया। मैं केवल मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त हुआ हूँ जिससे पुनः कालिदास के कलेवर में जी सकूँ। एक आकर्षण सदा मुझे उस सूत्र की ओर खींचता था जिसे तोड़कर मैं यहाँ से गया था। यहाँ की एक-एक वस्तु में जो आत्मीयता थी वह यहाँ से जाकर मुझे कहीं नहीं मिली। मुझे यहाँ की एक-एक वस्तु के रूप और आकार का स्मरण है।

[रुककर उसकी ओर देखता है।]

कुम्भ, बाघ-छाल, कुशा, दीपक, गेरू की आकृतियां··· और तुम्हारी आँखें। जाने के दिन तुम्हारी आंखों का जो रूप मैंने देखा था वह आज तक मेरी स्मृति में अंकित है। मैं अपने को विश्वास दिलाता रहा हूँ कि कभी भी मैं यहां लौटकर आऊँ सब कुछ वैसा ही होगा।

[कोई द्वार खटखटाता है। मल्लिका अव्यवस्थित भाव से उस ओर देखती है। कालिदास द्वार की ओर जाना चाहता है, पर वह उसे रोक देती है।]

मल्लिका : द्वार बन्द रहने दो। तुम जो बात कर रहे हो, करते जाओ।

कालिदास : देख तो लो कौन आया है।

मल्लिका : वर्षा का दिन है, कोई भी हो सकता है। तुम बात करते रहो। वह चला जाएगा।

[बाहर से आगन्तुक मदिरोन्मत्त स्वर में झल्लाता हुआ लौट जाता है, 'हर समय द्वार बन्द···हैं? हर समय बन्द!']

कालिदास : कौन था यह!

मल्लिका : मैंने कहा न, कोई भी हो सकता है। वर्षा के दिन में जिस किसीको आश्रय की आवश्यकता हो सकती है।

कालिदास : परन्तु मुझे इसका स्वर बहुत विचित्र-सा लगा।

मल्लिका : तुम यहाँ के सम्बन्ध में बात कर रहे थे।

कालिदास : मुझे लगा जैसे मैं इस स्वर को पहचानता हूँ। जैसे यहाँ की हर वस्तु की तरह यह भी किसी परिचित स्वर का बदला हुआ रूप है।

मल्लिका : तुम थके हुए और अस्वस्थ हो। बैठकर बात करो।

[कालिदास एक निःश्वास छोड़कर आसन पर बैठ जाता है। मल्लिका घुटनों पर बांहें रखकर कुछ दूर नीचे बैठ जाती है।]

कालिदास : मैंने बहुत बार अपने सम्बन्ध में सोचा है मल्लिका, और बहुधा इन निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अम्बिका ठीक कहती थी।

[बाँहें पीछे की ओर फैल जाती हैं और आँखें छत की ओर उठ जाती हैं।]

मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था ? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के अनन्तर उस प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा। और यह आशंका निराधार नहीं थी। [मल्लिका की ओर देखता है।]

तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन सम्भालने जा रहा हूँ ? तुम्हें यह बहुत स्वाभाविक लगा होगा ! परन्तु मुझे कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। सम्भवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब-तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था।

[ओठ काटकर उठ पड़ता है और झरोखे के निकट चला जाता है।]

परन्तु मैं यह भी जानता था कि मैं सुखी नहीं हो सकता। मैंने बार-बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि न्यूनता उस वातावरण में नहीं, मुझमें है। मैं अपने को बदल लूँ तो सुखी हो सकता हूँ, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। न तो मैं बदल सका और न सुखी हो सका। अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देश-भर में पहुँच गयीं, परन्तु मैं

सुखी नहीं हुआ। किसी और के लिए वही वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था। मेरे लिये नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह से उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है और जिस विशाल क्षेत्र में मुझे रहना चाहिए था उससे हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली हुई क्षितिज-रेखा पर पड़तीं तभी यह अनुभव मुझे चुभता कि मैं उस विशाल से दूर हो गया हूँ। मैं अपने को सहारा देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट लूँगा, परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और प्रेरित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे-धीरे खण्डित होता गया, होता गया। और एक दिन···एक दिन मैंने अनुभव किया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ। मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उस विशालता के साथ कुछ सम्बन्ध था।

[कुछ क्षण मौन रहता है। फिर टहलने लगता है।]

काश्मीर जाते हुए मैं यहाँ से होकर नहीं जाना चाहता था। मुझे लगता था कि यह प्रदेश, यहाँ की पर्वत-शृंखला और उपत्यकाएँ मेरे सामने एक मूक प्रश्न का रूप ले लेंगी। फिर भी लोभ का संवरण नहीं हुआ। परन्तु उस बार यहाँ आकर मैं सुखी नहीं हुआ। मुझे अपने से वितृष्णा हुई। उनसे भी वितृष्णा हुई जिन्होंने मेरे आने के दिन

को उत्सव की तरह माना। तब पहली बार मेरा मन मुक्ति के लिये व्याकुल हुआ था। परन्तु उस समय मुक्त होना सम्भव नहीं था। मैं तब तुमसे मिलने के लिये नहीं आया, क्योंकि भय था कि तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं उनसे बचना चाहता था। उसका कुछ भी परिणाम हो सकता था। मैं जानता था, तुमपर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, दूसरे तुमसे क्या कहेंगे। फिर भी इस सम्बन्ध में निश्चित था कि तुम्हारे मन में विपरीत भाव नहीं आयेगा। और मैं यह आशा लिए हुए चला गया कि एक कल ऐसा आयेगा जब मैं तुमसे यह सब कह सकूँगा। और तुम्हें अपने मन के द्वन्द्व का विश्वास दिला सकूँगा।...यह नहीं सोचा कि द्वन्द्व एक ही व्यक्ति तक सीमित नहीं होता, परिवर्तन एक ही दिशा को व्याप्त नहीं करता। इसलिये आज यहाँ आकर बहुत व्यर्थता का बोध होता है।

[पुनः झरोखे के निकट चला जाता है।]

लोग सोचते हैं, मैंने उस जीवन और वातावरण में रह-कर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। कुमारसम्भव की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो, यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें उज्जयिनी में देखने की कल्पना की। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला

के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई। रघुवंश में अज का विलाप भी मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति थी और…

[मल्लिका दोनों हाथों में मुंह छिपा लेती है। कालिदास सहसा बोलते-बोलते रुक जाता है और क्षण-भर उसकी ओर देखता है।]

मैं चाहता था, तुम यह सब पढ़ पातीं, परन्तु सूत्र कुछ इस रूप से टूटा था कि…

[मल्लिका मुँह से हाथ हटाकर नकारात्मक भाव से सिर हिलाती है।]

मल्लिका : वह सूत्र कभी नहीं टूटा।

[उठकर वस्त्र में लिपटे हुए पन्ने कोने से उठा लाती है और कालिदास के हाथों में रख देती है। कालिदास पन्ने पलटकर देखता है।]

कालिदास : मेघदूत ? तुम्हारे पास मेघदूत की प्रतिलिपि कैसे पहुँच गई ?

मल्लिका : मेरे पास तुम्हारी सब रचनाएँ हैं। रघुवंश और शाकुन्तलम् की प्रतियाँ कुछ मास पूर्व ही मुझे मिल पायी हैं।

कालिदास : तुम्हारे पास सब रचनाएँ हैं ? परन्तु वे यहाँ कैसे उपलब्ध हुईं ? क्या…

मल्लिका : उज्जयिनी के व्यवसायी कभी-कभी इस मार्ग से होकर

भी जाते हैं।

कालिदास : और उनके पास ये प्रतिलिपियाँ मिल जाती हैं ?

मल्लिका : मैंने कहकर मंगवायी थीं। वर्ष, दो वर्ष में कहीं एक प्रतिलिपि मिल पाती थी।

कालिदास : और इनके लिए द्रव्य ?

मल्लिका : वर्ष, दो वर्ष में एक प्रति मिल पाती थी। द्रव्य एकत्रित करने के लिए बहुत समय रहता था।

[कालिदास सिर झुकाए हुए आसन पर आ जाता है।]

कालिदास : जो अभाव वर्षों से मुझे सालते रहे हैं, वे आज और भी बड़े प्रतीत होते हैं मल्लिका ! मुझे वर्षों पहले यहाँ लौट आना चाहिए था कि यहाँ वर्षा में भीगता, भीगकर लिखता—वह कुछ जो मैं अभी तक नहीं लिख पाया और जो आषाढ़ के मेघों की भाँति वर्षों से मेरे अन्तर में घुमड़ रहा है···

[निःश्वास छोड़कर आसन पर रखे हुए ग्रंथ को उठा लेता है और पन्ने पलटने लगता है।]

परन्तु बरस नहीं पाता, क्योंकि उसे ऋतु नहीं मिलती वायु नहीं मिलती।···यह कौन-सी रचना है ? ये तो केवल कोरे पृष्ठ हैं।

मल्लिका : ये पत्र मैंने अपने हाथों से बनाकर सिये थे। सोचा था तुम राजधानी से आओगे तो मैं तुम्हें यह भेंट दूँगी। कहूँगी कि इन पृष्ठों पर अपने सबसे बड़े महाकाव्य की रचना करना। परन्तु उस बार तुम आकर भी नहीं आये और यह भेंट यहीं पड़ी रही। अब तो ये पन्ने टूटने भी

लगे हैं और मुझे कहते संकोच होता है कि ये तुम्हारी रचना के लिए हैं। [कालिदास पन्ना पलटता जाता है]

कालिदास : तुमने ये पृष्ठ अपने हाथों से बनाये थे कि इन पर मैं एक महाकाव्य की रचना करूँ!

[पन्ना पलटते हुए एक स्थान पर रुकता है।]

स्थान-स्थान पर इनपर पानी की बूंदें पड़ी हैं जो निःसन्देह वर्षा की बूंदें नहीं हैं। लगता है, तुमने अपनी आंखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है; और आंखों से ही नहीं, स्थान-स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद-कणों से मैले हुए हैं। स्थान-स्थान पर फूलों की सूखी पत्तियों ने अपने रंग इनपर छोड़ दिये हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दांतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ये ग्रीष्म की धूप के हल्के गहरे रंग, हेमन्त की पत्र-धूलि और इस घर की सीलन···ये पृष्ठ अब कोरे कहां हैं मल्लिका? इनपर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है··· अनन्त सर्गों के एक महाकाव्य की।

[ग्रन्थ को रखकर टहलने लगता है।]

इन पृष्ठों पर अब नया कुछ क्या लिखा जा सकता है!

[झरोखे के निकट चला जाता है और कुछ क्षण बाहर की ओर देखता रहता है। फिर उसकी ओर मुड़ता है।]

परन्तु इससे आगे भी तो जीवन शेष है। हम फिर अथ से आरम्भ कर सकते हैं।

[अन्दर से बच्ची के कुनमुनाने और रोने का शब्द सुनायी देता है। मल्लिका सहसा उठकर उद्विग्नता-

पूर्वक उस ओर चल देती है। कालिदास हतप्रभ-सा उस ओर देखता है।]

कालिदास : मल्लिका ! [मल्लिका रुककर उसकी ओरदेखती है।]

कालिदास : किसके रोने का शब्द है यह ?

मल्लिका : यह मेरा वर्तमान है।

[अन्दर चली जाती है। कालिदास स्तम्भित-सा झरोखे के पास से हटता है।]

कालिदास : तुम्हारा वर्तमान ?

[कोई द्वार खटखटाता है। फिर तीव्र आघात से द्वार अपने आप खुल जाता है। ड्योढ़ी पर विलोम की मदिरोन्मत्त आकृति दिखाई देती है। वस्त्र कीचड़ से लथपथ हैं। वह झूमता-सा अन्दर आता है।]

विलोम : भीगे दिन में फिसलकर गिरे और गिरे खाई में।... कितनी बार कहा है भैया विलोम, बहुत ऊँचे मत चढ़ा करो। परन्तु भैया विलोम क्यों मानने लगे ? पहले आये तो द्वार बन्द। लौटकर गये और फिसल गये। फिर आये तो फिर द्वार बन्द। फिर लौटकर जाते तो क्या होता ! आज का दिन है ऐसा ही कि...

[कालिदास को देखकर बोलते-बोलते रुक जाता है। दृष्टि का भाव ऐसे हो जाता है जैसे किसी बहुत सूक्ष्म पदार्थ का अध्ययन कर रहा हो।]

न जाने आंखों को क्या हो गया है ! कभी अपरिचित आकृतियां बहुत परिचित जान पड़ती हैं और कभी परिचित आकृतियां भी परिचित नहीं लगतीं...अब यह इतनी

परिचित आकृति है और मैं इसे पहचान ही नहीं रहा। आकृति जानी हुई है और व्यक्ति नया-सा लगता है।... क्यों बन्धु, तुम मुझे पहचानते हो?

[मल्लिका अन्दर से आती है और विलोम को देखकर द्वार के पास ही जड़ हो जाती है।]

कालिदास : आकृति बहुत बदल गई है परन्तु व्यक्ति आज भी वही है।

विलोम : स्वर भी परिचित है और शब्द भी।

[आँखें स्थिर करके देखने का प्रयत्न करता है। फिर सहसा अट्टहास कर उठता है।]

तो तुम हो तुम?...गिरने और चोट खाने का सारा कष्ट दूर हो गया।...कितने दिनों से तुम्हें देखने की लालसा थी! आओ...!

[उसकी ओर बाहें बढ़ाता है। परन्तु कालिदास उसके सामने से हट जाता है।]

गले नहीं मिलोगे? मेरा शरीर मैला है इसलिए? या मुझी से घृणा है? परन्तु इस तरह मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध नहीं टूट सकता। तुमने कहा था न कि हम एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं। नहीं कहा था? मैंने इन वर्षों में उस निकटता में अन्तर नहीं आने दिया। मैं तो समझता हूँ कि अब हम एक-दूसरे के और भी निकट हो गये हैं।

[मल्लिका की ओर मुड़ता है।]

क्यों मल्लिका, ठीक नहीं कहता...! तुम वहां स्तम्भित-सी क्यों खड़ी हो? विलोम इस घर में अब तो अयाचित

अतिथि नहीं है। अब तो वह अधिकार से आता है। नहीं! अब तो वह इस घर में कालिदास का स्वागत और आतिथ्य कर सकता है। नहीं?

[फिर कालिदास की ओर मुड़ता है।]

कहो कि कितनी आकस्मिक बात है कि तब भी मुझसे इस घर में ही भेंट हुई थी और आज भी यहीं हुई है। परन्तु सच मानो यह आकस्मिक बात नहीं है। तुम जब भी आते हमारी भेंट यहीं होती।

[मल्लिका की ओर मुड़ता है।]

तुमने अभी तक कालिदास के आतिथ्य का आयोजन नहीं किया? वर्षों के अनन्तर एक अतिथि घर में आये और उसका आतिथ्य न हो? तुम जानती हो कालिदास को इस प्रदेश के हरिणशावकों से कितना मोह है···?

[फिर कालिदास की ओर मुड़ता है।]

एक हरिणशावक इस घर में भी है।···तुमने मल्लिका की बच्ची को अभी नहीं देखा? उसकी आंखें किसी हरिणशावक से कम सुन्दर नहीं हैं। और जानते हो अष्टावक्र क्या कहता है! कहता है···

[मल्लिका सहसा आगे बढ़ आती है।]

मल्लिका : आर्य विलोम!

[विलोम हल्की-सी हँसी हँसता है।]

विलोम : तुम नहीं चाहतीं कि कालिदास यह जाने कि अष्टावक्र क्या कहता है? परन्तु मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं होता। मैं इसलिए कह रहा था कि सम्भव है

कालिदास ही देखकर बता सके कि उसकी बात कहाँ तक सच है, कि क्या सचमुच बच्ची की आकृति विलोम से मिलती है या...

[मल्लिका हाथों में मुंह छिपाए आसन पर जा बैठती है।]
विलोम कालिदास के निकट चला जाता है।]

चलो, देखोगे!

[कालिदास आविष्ट भाव से उसकी ओर देखता है।]

कालिदास : यहाँ से चले जाओ विलोम।

विलोम : चला जाऊँ? [हँसता है।]

इस घर से या ग्राम-प्रान्तर से ही! सुना था, शासन बहुत बली होता है। प्रभुता में बहुत सामर्थ्य होती है।

कालिदास : मैं कह रहा हूँ, इस समय यहाँ से चले जाओ!

विलोम : क्योंकि तुम यहाँ लौट आये हो?...क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है?...क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत हैं? [हँसता है।] जैसे तुमसे बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। परन्तु समय निर्दय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है; अधिकार दिये हैं। वह धूप और नैवेद्य लिए घर की देहली पर रुका नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया है, निर्माण किया है।...तुम्हें उसके निर्माण से वितृष्णा होती है; क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो नहीं देख पाते।

[कई क्षण उसकी ओर देखता है, फिर हँसता है।]

...तुम चाहते हो इस समय मैं यहाँ से चला जाऊँ, मैं

चला जाता हूँ। इसलिए नहीं कि तुम आदेश देते हो। परन्तु इसलिए कि तुम आज यहाँ अतिथि हो और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए।

[द्वार की ओर चल देता है। द्वार के पास रुककर मल्लिका की ओर देखता है।]

देखना मल्लिका, आतिथ्य में कोई न्यूनता न रहे। जो अतिथि वर्षों में एक बार आया है, वह आगे जाने कभी आयेगा या नहीं।

[अर्थपूर्ण दृष्टि से कालिदास की ओर देखता है और चला जाता है। मल्लिका मुंह से हाथ हटाकर कालिदास की ओर देखती है। कुछ क्षण दोनों मौन रहते हैं।]

मल्लिका : क्या सोच रहे हो !

[कालिदास झरोखे के निकट चला जाता है।]

कालिदास : सोच रहा हूँ कि वह आषाढ़ का ऐसा ही एक दिन था। ऐसे ही घाटी में मेघ भरे थे और असमय अँधेरा हो आया था। मैंने घाटी में एक आहत हरिण को देखा था। और उठाकर यहाँ ले आया था। तुमने उसका उपचार किया था।

[मल्लिका उठकर उसके निकट चली जाती है।]

मल्लिका : और भी तो कुछ सोच रहे हो !

कालिदास : और सोच रहा हूँ कि उपत्यकाओं का विस्तार वैसा ही है। पर्वत-शिखर की ओर जाने वाला मार्ग वही है। वायु में वही नमी है। वातावरण की ध्वनियाँ वैसी ही हैं।

मल्लिका : और ?

कालिदास : और कि वही चेतना है जिसमें कम्पन होता है। वही हृदय है जिसमें आवेश जागता है। परन्तु...

[मल्लिका चुपचाप उसकी ओर देखती रहती है। कालिदास वहाँ से हटकर आसन के निकट आ जाता है और ग्रन्थ को उठा लेता है।]

परन्तु वह कोरे पृष्ठों का महाकाव्य तब नहीं लिखा गया था।

मल्लिका : तुम कह रहे थे कि तुम फिर अथ से आरम्भ करना चाहते हो [कालिदास निःश्वास छोड़ता है।]

कालिदास : मैंने कहा था, मैं अथ से आरम्भ करना चाहता हूँ। यह सम्भवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था। परन्तु देख रहा हूँ कि समय अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि...

मल्लिका : क्योंकि ?

[सहसा फिर अन्दर से बच्ची के रोने का शब्द सुनायी देता है। मल्लिका ससाध्वस अन्दर चली जाती है। कालिदास ग्रन्थ को आसन पर रख देता है और जैसे अपने को उत्तर देता है।]

कालिदास : क्योंकि वह प्रतीक्षा नहीं करता।

[बिजली चमकती है और मेघ-गर्जन सुनाई देता है। कालिदास एक बार चारों ओर देखता है, फिर झरोखे के पास चला जाता है। वर्षा पड़ने लगती है। वह झरोखे के पास आकर ग्रन्थ को एक बार फिर उठाकर देखता है और रख देता है। फिर एक दृष्टि

अन्दर की ओर डालकर ड्योढ़ी में चला जाता है। क्षण-भर सोचता-सा वहाँ रुका रहता है, फिर बाहर से दोनों किवाड़ मिला देता है। वर्षा और मेघ-गर्जन का शब्द बढ़ जाता है। कुछ क्षणों के अनन्तर मल्लिका बच्ची को वक्ष से सटाये हुए अन्दर से आती है और कालिदास को न देखकर दौड़ती-सी झरोखे के पास जाती है।]

मल्लिका : कालिदास !

[उसी त्वरा से झरोखे के पास से आकर वह ड्योढ़ी के किवाड़ खोल देती है।]

कालिदास !

[पैर बाहर की ओर बढ़ने लगते हैं परन्तु बच्ची को देखकर जैसे जकड़ जाती है। टूटी-सी आकर आसन पर बैठ जाती है और बच्ची को और भी सटाकर आवेश के साथ चूमने लगती हैं। बिजली बार-बार चमकती है और मेघ-गर्जन सुनाई देता रहता है।]

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, क्वीन्स रोड, दिल्ली-६
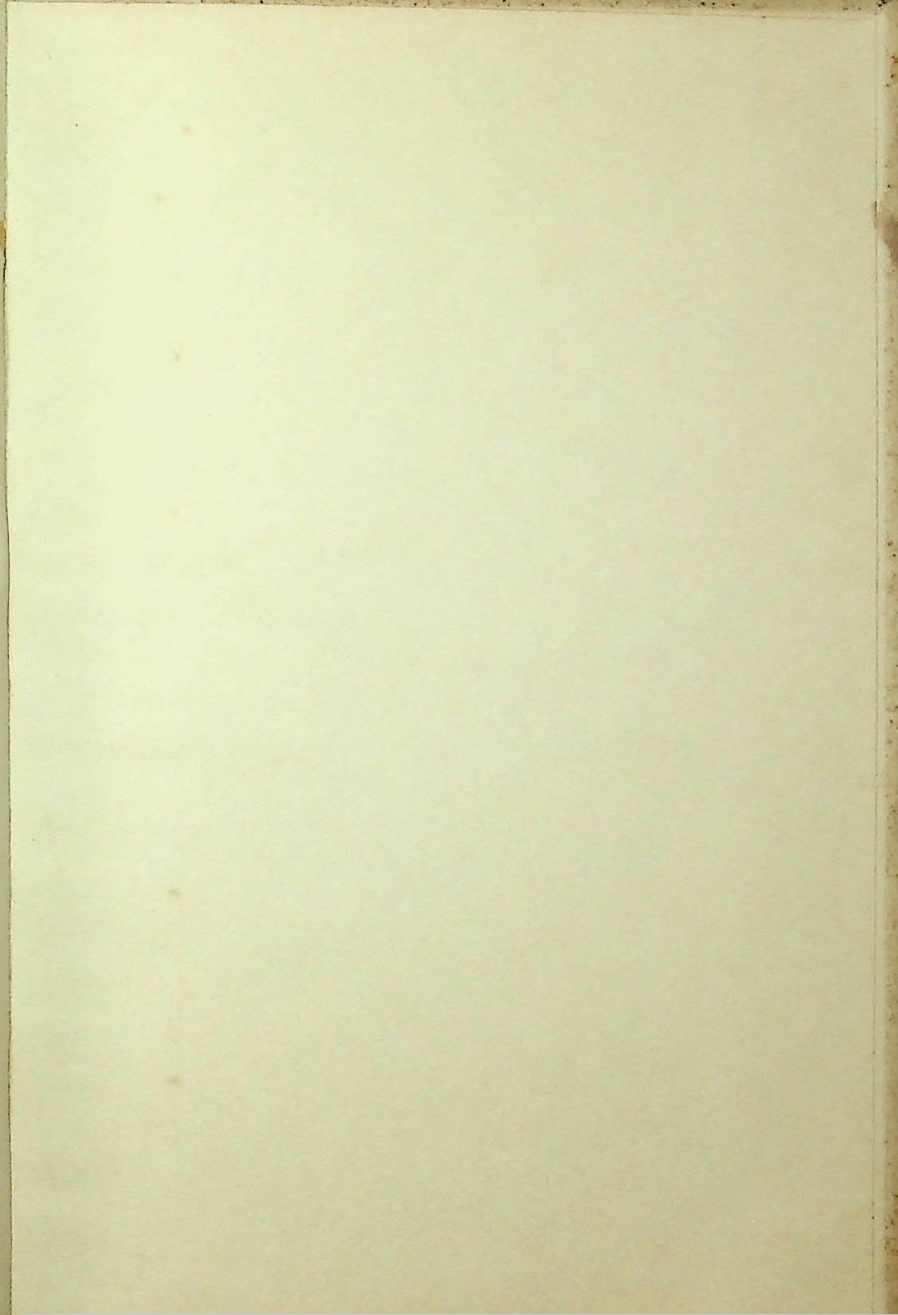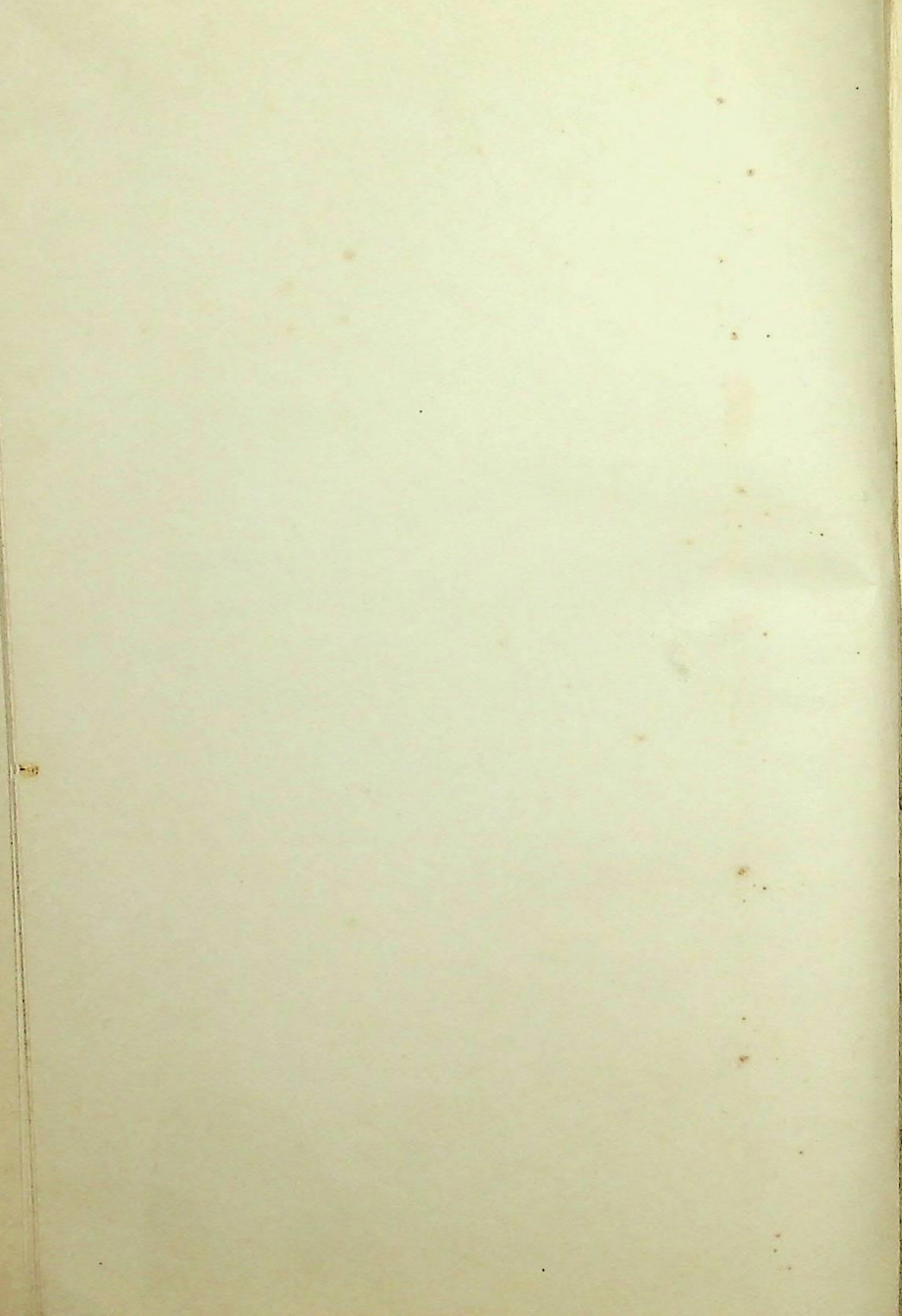
यदि आप चाहते हैं
कि हिन्दी में प्रकाशित
नवीनतम उत्कृष्ट पुस्तकों का परिचय
आपको मिलता रहे,
तो कृपया अपना पूरा पता
हमें लिख भेजें।
हम आपको इस विषय में
नियमित सूचना देते रहेंगे।

हमारा नाट्य साहित्य

न्याय की रात	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	३·५०
धर्मराज	आचार्य चतुरसेन	३·००
रक्तदान	हरिकृष्ण प्रेमी	४·५०
ममता	हरिकृष्ण प्रेमी	२·५०
कीर्ति-स्तम्भ	हरिकृष्ण प्रेमी	३·००
डाक्टर	विष्णु प्रभाकर	३·००
रेवा	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	३·००
अशोक	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	३·००
कांच के खिलौने	अनु० अमिताभ	५·००
खंडहर	विमला रैना	३·००
नये एकांकी	सं० अज्ञेय	२·००
तीन एकांकी	पी० लक्ष्मीकुट्टि अम्मा	२·००
कलापूर्ण एकांकी	सं० डा० दशरथ ओझा	४·००

हिन्दी शेक्सपियर

शेक्सपियर के दस प्रसिद्ध नाटकों का
डा० रांगेय राघव द्वारा अनुवाद

प्रत्येक का मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली